ज्ञान की राजनीति पुस्तकमाला – 3

ज्ञान मुक्ति आवाहन

विद्या आश्रम
सारनाथ, वाराणसी–221007

ज्ञान की राजनीति पुस्तक माला–3

पुस्तक का नाम : **ज्ञान मुक्ति आवाहन**

लेखक : **सुनील सहस्रबुद्धे**

वर्ष : 2008

सहयोग राशि : रू. 10/–

सम्पादन एवं प्रकाशन : डा. चित्रा सहस्रबुद्धे द्वारा विद्या आश्रम, सारनाथ, वाराणसी की ओर से

अक्षर संयोजन : एफिशिएन्ट प्रिन्टर्स, कचहरी, वाराणसी

मुद्रक : सतनाम प्रिन्टर्स, पाण्डेयपुर, वाराणसी

सम्पर्क : विद्या आश्रम, सा 10/82 ए, अशोक मार्ग, सारनाथ, वाराणसी–221007

फोन : 0542–2595120

वेब साइट : vidyaashram.org

ज्ञान की राजनीति

सन् 1990 से पूरी दुनिया में एक परिवर्तन का दौर चल रहा है। सूचना उद्योग का विकास, निजीकरण, बाजार, मीडिया और मनोरंजन, जैविक खेती, शहरों का पुनर्संगठन, वैश्वीकरण, अमेरिका की दादागिरी इत्यादि कुछ महत्वपूर्ण बिन्दु हैं जिनके मार्फत इस परिवर्तन को समझा जा सकता है।

सूचना उद्योग ने ज्ञान की नई परिभाषा दी है और यह कहा जा रहा है कि इस परिवर्तन के मार्फत एक ज्ञान आधारित समाज बन रहा है। विज्ञान की सिरमौर स्थिति टूट गई है। इंटरनेट का बोलबाला बढ़ा है। इससे सार्वजनिक क्षेत्र में लोकविद्या को फिर से पहचान मिली है।

ज्ञान और विकास की बातें कारीगरों, किसानों, मजदूरों, महिलाओं, मध्यम वर्गों, छोटा–छोटा धन्धा करने वालों और आदिवासियों के लिये भुलावा साबित हो रही है। ये सब लोग पुख्ता ज्ञान और कौशल रखते हैं। लेकिन एक तरफ इस ज्ञान पर कम्प्यूटर–इंटरनेट द्वारा कब्ज़ा किया जा रहा है और दूसरी ओर इस ज्ञान के आधार पर उत्पादित वस्तुओं को बाजार में दाम नहीं मिलता। इस तरह गरीब किंतु ज्ञानी समाज के ज्ञान पर कब्जा किया जा रहा है और उसका शोषण हो रहा है। लोकविद्या, साइंस और इंटरनेट सभी के ज्ञान पर नये उद्योगपतियों और वित्तीय पूँजी के मालिकों का कब्जा है।

सभी राजनीतिक पार्टियाँ उसी विकास के आदर्श को मानती हैं जिसमें गरीबी दूर करने का कोई रास्ता नही है उल्टे जो गरीबों के शोषण पर ही आधारित होता है। ज़रूरत एक ऐसे परिवर्तन की राजनीति की है जो गरीबों के हितों को सर्वोपरि रखे। यह तभी संभव है जब एक नई परिवर्तन की राजनीति खड़ी हो। यह ज्ञान की राजनीति होगी।

ज्ञान की राजनीति के विचार को सबके सामने रखने के लिये और उस पर सार्वजनिक बहस छेड़ने के लिये चार पुस्तकों की यह पुस्तक–माला बनाई गई है। ये पुस्तकें हैं–

1. **बौद्धिक सत्याग्रह**
2. **लोगों के हित की राजनीति और ज्ञान का सवाल**
3. **ज्ञान मुक्ति आवाहन**
4. **युवा ज्ञान शिविर**

ज्ञान मुक्ति दर्शन

ज्ञान मुक्ति दर्शन के कुछ मूल्य निम्नलिखित हैं–

1. ज्ञान उद्योग नही है।
2. ज्ञान मुनाफा कमाने के लिये नही है।
3. ज्ञान किसी की निजी सम्पत्ति नही है।
4. ज्ञान शोषण का साधन नही है।
5. ज्ञान का शोषण मानवता के प्रति अपराध है।
6. ज्ञान मनुष्य और समाज के पुनर्निर्माण का साधन है।
7. ज्ञान समाजहित की धरोहर है।
8. ज्ञान मनुष्य की जीविका का साधन है।
9. ज्ञान मनुष्य और समाज की शक्ति और मुक्ति का स्रोत है।
10. ज्ञान की सभी धारायें बराबर के सम्मान की हकदार हैं।

•

5

लोकविद्या और सामाजिक परिवर्तन

मनुष्य का जीवन निर्धारित करने में विद्या की भूमिका शायद हमेशा ही सबसे अधिक रही है, धर्म और राज्य से भी अधिक। विद्या में मनुष्य का आधार होता है, उसकी पहचान होती है। विद्या ही मनुष्य को मुक्ति का मार्ग देती है और इसी के जरिये वह अपनी जीविका भी चलाता है। समाज की गति, लोगों के आपसी सम्बन्ध और उनमें बदलाव के आधार भी मनुष्य की विद्या में होते हैं। अन्याय के खिलाफ संघर्ष और शोषण के प्रतिरोध तथा सामाजिक परिवर्तन की चेतना सभी को विद्या में अपना आधार ढूँढ़ना पड़ता है। एक वाक्य में कहें तो विद्या मनुष्य की सक्रियता का वह रूप है जिसे मनुष्य से अलग नहीं किया जा सकता।

अगर लोगों के मन का और सबके लिये न्याय का समाज बनना है तो उसे आम लोगों की सक्रियता पर ही आधारित होना होगा और इस सक्रियता का आधार उनकी अपनी विद्या में ही हो सकता है। किसानों, कारीगरों, छोटे–छोटे दुकानदारों, महिलाओं और आदिवासियों के पास जो विद्या है उसे लोकविद्या कहते है। लोकविद्या के आधार पर खड़ी हुई राजनीति आज तक की सबसे साफ राजनीति होगी। धर्म और पूँजी के बल पर खड़ी राजनीति इसके सामने टिक नही सकेगी। लोकविद्या में जमाने की आस्था जागृत करना और लोकविद्या धारक समाज में अपनी विद्या की असीम शक्ति के प्रति विश्वास पैदा करना आज क्रांतिकारी सामाजिक परिवर्तन की पहली शर्त है।

●

6

ज्ञान मुक्ति मंच

21 वीं सदी की शुरूआत के साथ औद्योगिक युग समाप्त हो चुका है और सूचना युग शुरू हुआ है। कहा जा रहा है कि एक ज्ञान आधारित समाज बन रहा है। हम देख रहे हैं कि इस युग में सूचना उद्योग (टी.वी., मोबाइल,कम्प्यूटर–इन्टरनेट आदि) सबसे तेजी से फल–फूल रहे हैं। छोटे–छोटे उद्योग–धन्धे और खेती उजड़ रहे हैं और इनसे जुड़े लोग आत्महत्या कर रहे हैं। जो युवक कम्प्यूटर–इन्टरनेट पर बहुत कुशलता के साथ अंग्रेजी में काम कर रहे हैं केवल उन्हें ही मोटे वेतन मिल रहे हैं और शेष नौजवानों के लिए सम्मान लायक रोजगार के रास्ते बन्द होते जा रहे हैं। निम्नलिखित बातें विषेशरूप से ध्याान देने योग्य हैं।

- ज्ञान आधारित सूचना युग में शिक्षा महंगी है। यानि सामान्य लोगों से ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार छीना जा रहा है।
- ज्ञान आधारित सूचना युग में ज्ञान की ज्यादातर गतिविधियाँ कम्प्यूटर–इन्टरनेट पर होने जा रही हैं और वे अंग्रेजी में हैं। यानि कम्प्यूटर का ज्ञान आम जनता की पहुँच से बाहर है।
- ज्ञान आधारित सूचना युग में लोकविद्या (किसानी, कारीगरी, वान्यिकी, स्वास्थ्य रक्षा, पालन–पोषण आदि लोक आधारित ज्ञान) को कम मूल्य दिया जा रहा है। यानि आम लोगों के पास जो ज्ञान है उसका शोषण हो रहा है।
- ज्ञान आधारित सूचना युग में लोकविद्या पर कब्जा किया जा रहा है। पेटेन्ट बनाकर और कम्प्यूटर में संग्रहित कर लोकविद्या पर पूँजीपतियों का कब्जा स्थापित हो रहा है।
- ज्ञान आधारित सूचना युग में शिक्षा, बाजार, प्रशासन और सेवा (डाक, बैंक, पुस्तकालय, खबरें, शोध, सूचना

आदि) कम्प्यूटर–इन्टरनेट पर स्थानांतरित हो रहे हैं। यानि सार्वजनिक व्यवस्थायें गरीब समाज से दूर हो रही हैं।

कहने को तो यह ज्ञान आधारित सूचना युग है किन्तु वास्तव में यह ज्ञान पर कब्ज़े और उसके शोषण पर आधारित सूचना युग है। इसलिए आम आदमी की जिन्दगी जीने के लायक बने, समाज में न्याय की स्थापना हो और सभी नौजवानों को आगे बढ़ने के मौके मिलें इसकी पहली शर्त है कि ज्ञान को पूँजीपतियों के कब्जे से और शोषण से मुक्त किया जाय। इसी के लिए ज्ञान मुक्ति मंच बनाया गया है ।

ज्ञान मुक्ति मंच की प्रमुख माँगें निम्नलिखित हैं –

- कम्प्यूटर हिन्दी में हो।
- गाँव–गाँव में मीडिया स्कूल हो।
- घर–घर में उद्योग हो।
- स्थानीय बाजार को संरक्षण हो।
- लोकविद्या को शिक्षा में शामिल किया जाय।
- उच्च शिक्षा के दरवाजे सबके लिए खुले हों।

ज्ञान मुक्ति मंच जगह–जगह पर नौजवानों के ज्ञान शिविर चलाकर इस विषय पर नौजवानों को नई समझ से लैस कर रहा है। जून 2007 में विद्या आश्रम पर हुये युवा ज्ञान शिविर में प्रस्तुत पर्चों के सारांशों पर यह पुस्तिका बनाई गई है। इन ज्ञान शिविरों में क्या होता है इसकी जानकारी इस पुस्तिका से मिलती है।आगे बढ़कर हिस्सा लें। इन ज्ञान शिविरों में आगे बढ़कर हिस्सा लें।

संचालन समिति, ज्ञान मुक्ति मंच,

विद्या आश्रम, अशोक मार्ग ,सारनाथ ,वाराणसी।
फोन : 2595120

1

ज्ञान का सवाल

आजकल बहुत से पढ़े–लिखे लोग, राजनीतिज्ञ, एन.जी.ओ. वाले, वित्तीय प्रबंधक और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में सक्रिय लोग 'ज्ञान' पर चर्चा करते हुए पाये जाते हैं। वे ज्ञान आधारित समाज की बात करते हैं और कहते हैं कि सूचना प्रौद्योगिकी यानि कम्प्यूटर, इंटरनेट, मोबाइल के अधिकाधिक इस्तेमाल वाले समाज ज्ञान आधारित समाज हैं। 'ज्ञान' शब्द के विस्तृत प्रयोग के चलते और साफ्टवेअर को ज्ञान उत्पाद का नाम दे देने से 'ज्ञान आधारित समाज' की शब्दावली भी एक स्वयंसिद्ध मुहावरे के रूप में स्वीकार होती प्रतीत होती है। ज्ञान आधारित समाज, ज्ञान उद्योग, ज्ञान उत्पाद, ज्ञान संवाद, ज्ञान प्रबंधन, नालेज पार्टनरशिप, नालेज कोलेबोरेशन, नालेज प्लेटफार्म इत्यादि शब्दों का प्रचलन यह बताता है कि सोचने और कार्य करने का एक ऐसा नया प्रकार विस्तार पा रहा है जो कहीं न कहीं 'ज्ञान' या 'ज्ञान के विचार' की केन्द्रीय भूमिका को मान्यता देता है। समाज ज्ञान आधारित हो यह तो बहुत अच्छी बात है लेकिन ज्ञान को कम्प्यूटर और इंटरनेट से यों जोड़ दिया जाय कि 'जहाँ कम्प्यूटर नहीं वहाँ ज्ञान नहीं' तो यह एकदम गलत बात होगी। लेकिन ऐसा लगता है कि यही गलत बात थोपी जा रही है।

आधुनिक समाज शुरू से ही दो दुनिया में विभाजित रहा है जिसे अलग–अलग सामाजिक सोच वालों ने अलग–अलग नाम दिये, जैसे अमीर और गरीब, पश्चिम और पूरब, केन्द्र और परिधि, औद्योगिक और कृषि आधारित, पूँजी की दुनिया और मेहनतकशों की दुनिया, साम्राज्यवादी और उपनिवेश , पश्चिमीकृत और बहिष्कृत इत्यादि। सूचना युग में भी ऐसी दो दुनिया बरकरार हैं और इसे सभी मानते हैं। जैसे इंटरनेट की दुनिया और सामान्य नागरिकों की दुनिया, नेटवर्क सोसायटी और सिविल सोसायटी या फिर

मायावी दुनिया और वास्तविक दुनिया। एक में पेसा है, आपसी सम्पर्क है, मौज और मनोरंजन है और सत्ता का समर्थन है तो दूसरी में अनिश्चिततायें हैं, शारीरिक मेहनत है, बेरोजगारी है और भूखमरी भी। सामाजिक परिवर्तन चाहने वाले परिवर्तन का अर्थ यही लगाते हैं कि समाज यों विभाजित न रहे तथा शोषण व गैर–बराबरी से मुक्त हो।

औद्योगिक समाज में परिवर्तन की विचारधाराओं ने ज्ञान का सवाल नही छेड़ा था क्योंकि तब शोषित दुनिया के ज्ञान को ज्ञान नही माना गया था और पूँजी की दुनिया का आधार श्रम के शोषण में था। किंतु अब इस सूचना युग में सारा कारोबार ही ' ज्ञान ' के नाम पर हो रहा है। ज्ञान के नाम पर समाज बाँटा जा रहा है और श्रम के शोषण के साथ ज्ञान के शोषण की व्यवस्था बन रही है। समाज परिवर्तन के विचार को ज्ञान का सवाल क्या है और उससे गैर–बराबरी और शोषण मिटाने वाले रास्तों का कैसा रिश्ता है इसकी समझ बनानी होगी। यह पुस्तक एक ऐसा ही प्रयास है।

समाज में 'ज्ञान' पर वार्ता के लिये यह जरूरी है कि औद्योगिक समाज की वैचारिक चौखटों से मुक्त हुआ जाय। इनमें 19वीं और 20वीं सदी की पूँजीवादी विचारधारायें और इसी काल की समाज परिवर्तन की विचारधारायें शामिल हैं। यह नहीं कि उनसे कुछ सीखा न जाय किंतु सिर्फ यह कि उस वैचारिक चौखट यानि उन अवधारणाओं के ताने–बाने ओर उनके तार्किक सम्बन्धों से न बँधा जाय।

औद्योगिक समाज में साइंस के नाम पर एक नये ईश्वर की रचना की गई थी। यह सामान्य मान्यता बनाई गई थी कि साइंस ज्ञान का परम रूप है और ज्ञान प्राप्त करने के साइंस के तरीके ही ज्ञान प्राप्त करने के एकमात्र जायज तरीके हैं। कहा गया कि साइंस का संस्कृति, इतिहास, सामाजिक मूल्यों आदि से कोई रिश्ता नहीं होता। औद्योगिक पूँजीवाद ने साइंस के सहारे इस तरह ज्ञान पर आधारित सारी शक्ति अपने हाथों में केन्द्रित कर ली थी। किसानों, कारीगरों, मजदूरों, महिलाओं, आदिवासियों, किन्हीं की भी विद्या को ज्ञान का दर्जा देने से इनकार कर दिया था। उनके

मनुष्यत्व के लिये 'श्रम की प्रतिष्ठा' के सहारे की बात की गई, न कि उनके ज्ञान के आधार की । इन लोगों में शोषण, गरीबी और गुलामी के चलते वह ताकत नही एकजुट हो पाई जिसके बल पर वे सार्वजनिक तौर पर अपने ज्ञान का दावा कर पाते। इसीलिये आम हित के सामाजिक परिवर्तन की विचारधारायें भी ज्ञान का सवाल नही उठा पाईं।

20वीं सदी के अंतिम दशकों में साइंस को समीक्षात्मक चुनौती देने का एक तरीका विकसित हुआ। इस चुनौती का आधार महिलाओं, किसानों ओर कारीगरों जैसे बहिष्कृत समुदायों की हलचल में था। ज्ञान की दृष्टि से सामान्यतः यह आधार लोकविद्या के मूल्यों, तर्क पद्धतियों व ज्ञान भण्डार में था। लेकिन तब तक साइंस की सत्ता अंदर से ही बिखरने के कगार पर थी। 1990 के दशक से इंटरनेट ने ज्ञान के क्षेत्र में साइंस की परम सत्ता पर व्यापक सवाल खड़े करने के दर्शन का आधार बनाना शुरू कर दिया।

सूचना युग ने अपने विकास क्रम में साइंस की परम ज्ञान सत्ता को मानने से धीरे–धीरे इनकार कर दिया। औद्योगिक समाज ने साइंस को 'सत्य की खोज' के रूप में प्रस्तुत किया था। अब ज्ञान की गतिविधियों का सीधा सम्बन्ध व्यावसायिकता से होता है। ऐसा नही है कि साइंस का व्यावसायिकता से सम्बन्ध ही नही था, वास्तव में उसका भी व्यावसायिकता के साथ , पूँजी के साथ गहरा सम्बन्ध था। लेकिन 'सत्य की खोज' के साथ भी रिश्ता था। अब 'सत्य' की कोई बात ही नही है। ज्ञान की सारी गतिविधियाँ प्रबन्धन की दृष्टि के अन्तर्गत ही आती हैं।

सत्य की खोज और ज्ञान का उत्पादन तथाकथित ज्ञान आधारित समाज की मुख्य चिंता नहीं है। सूचना और संचार की प्रौद्योगिकी का कार्य संगठन और संचार का है। अब इससे फर्क नही पड़ता कि ज्ञान का उत्पादन किसने और कैसे किया, विश्वविद्यालय की प्रयोगशाला में या दूर–दराज के किसी गाँव में, प्रयोग का रास्ता अपनाया गया या नहीं, वैज्ञानिक तरीकों का पालन किया गया या नहीं। किसी भी जानकारी को ज्ञान का दर्जा

देने के लिये यह काफी है कि उसे कम्प्यूटर–इंटरनेट द्वारा संगठित किया जा सके।

ज्ञान के सार (विषय वस्तु) से ज्ञान के संगठन और ज्ञान के उत्पादन से ज्ञान के संचार की दिशा में हो रहे परिवर्तन ने विचार की दुनिया में एक तूफान ला दिया है। सारा अंग्रेजी दर्शन अपनी कब्र के पास खड़ा नज़र आता है। सूचना और संचार प्रौद्योगिकी द्वारा विभिन्न समाजों के ज्ञान भण्ड़ार को संगठित करने की क्षमता ने उन समाजों के दर्शन, विश्वासों और जीवनशैली के लिये सार्वजनिक मान्यता का रास्ता खोला है। किन्तु इस प्रक्रिया में विभिन्न समाजों के ज्ञान घातक काट–छाँट के शिकार हो सकते हैं।

इस तरह लोकविद्या की प्रतिष्ठा के नये अवसर बने हैं। लेकिन ये अवसर अपनी कीमत अपने साथ लेकर आये हैं। एकतरफ कम्प्यूटर में संगठन की जरूरतों के मुताबिक लोकविद्या का खुला रूप बँध जाता है, वह साफ्टवेअर के सिद्धांतों के अनुरूप ढलने को मजबूर हो जाती है और उसकी लोकस्थ स्थिति टूटने से वह किसी दूसरी विद्या में ही परिवर्तित हो जाती है। दूसरी ओर कम्प्यूटर में संग्रहण के मार्फत लोकविद्या कम्पनियों के घेरे में आ जाती है। लोकविद्या इस प्रक्रिया से पूर्वपरिचित है। ऐतिहासिक पैमाने पर विद्या के विकास का तरीका ही शायद यह है कि समय–समय पर लोकविद्या के अंश काल और स्थान के अनुरूप संगठित विद्या में रूपांतरित हों और समयांतर में एक नये रूप में फिर से लोकविद्या में शामिल हो जायें। इसलिये, हालाँकि लोकविद्या धारक इस क्रिया को एक मौलिक ज्ञान से सम्बन्धित सामाजिक क्रिया के रूप में पहचानते भी होंगे लेकिन इस क्रिया के साथ उस साफ्टवेअर के रूप में ढाली गई उनकी विद्या पर कम्पनियों का कब्जा हो जाता है यह उनकी चिंता का विषय होना चाहिये क्योंकि इससे उनकी विद्या उन्हीं के शोषण का एक नया तंत्र बनाने में इस्तेमाल हो जाती है। इतना ही नही कि लोकविद्या का साफ्टवेअर में यह रूपांतरण इस कब्जे और कम्पनियों के स्वार्थ और सीमित दृष्टि के चलते घातक काट–छाँट और तोड़–फोड़ का

शिकार होता है। ज्ञान पर कब्जा यह सूचना युग के जन्म के साथ पैदा हुई स्थिति है। समाज शोषण और गैर–बराबरी से मुक्त हो इसकी प्रथम शर्त यह है कि ज्ञान इस कब्जे से मुक्त हो। ज्ञान मुक्ति के इस संघर्ष में लोकविद्या की प्रतिष्ठा और कम्पनियों के नियंत्रण से ज्ञान की मुक्ति दो महत्वपूर्ण शुरूआती बिन्दु हैं।

ये बहुत सी बातें नई हैं तथा परिवर्तन के कार्यकर्ताओं को ये बातें समझने के लिये एक वैचारिक माहौल की जरूरत है। ऐसा वैचारिक माहौल गोष्ठियों, वार्ताओं और शिविरों से तथा सार्वजनिक बहसों और जनसंघर्षों में परिवर्तन के ज्ञान की दृष्टि रखकर बनाया जाना है। यह पुस्तक परिवर्तन की ज्ञान–दृष्टि से परिचय कराने का एक प्रयास है।

2

ज्ञान के प्रकार

सब जानते हैं कि ज्ञान के अनेक प्रकार होते हैं। जैसे स्वास्थ्य–रक्षा का ज्ञान, कृषि का ज्ञान, शिक्षा विधियों का ज्ञान, रासायनिक क्रियाओं का ज्ञान, सौर मण्ड़ल का ज्ञान, गणित और भौतिक विज्ञान का ज्ञान, संगठन बनाने का ज्ञान, रीतियों–मूल्यों–मान्यताओं आदि का ज्ञान, आध्यात्मिक ज्ञान इत्यादि।

किसी भी विशिष्ट ज्ञान के प्रकार के तरह–तरह के जानकार हो सकते हैं ओर उनके समझने के तरीके भी अलग–अलग हो सकते हैं। जैसे कृषि का ज्ञान किसान के पास भी होता है और कृषि वैज्ञानिक के पास भी होता है। लेकिन दोनो का समझने का तरीका बहुत अलग होता है। स्वास्थ्य रक्षा का ज्ञान आधुनिक चिकित्सकों, वैद्यों, होमियोपैथों, हकीमों और बहुत से सामान्य लोगों के पास होता है। सभी के तरीके अलग–अलग हैं, कहीं कोई प्रभावी होता है तो कहीं कोई और। आध्यात्मिक ज्ञान के तो न जाने कितने तरीके हैं। वनों का ज्ञान जितना वनस्पति शास्त्र वालों को होता है उससे ज्यादा शायद आदिवासियों के पास होता है। दोनों के सोचने के तरीके भी एकदम अलग होते हैं। भवन निर्माण की भी तरह–तरह की विद्यायें हैं और उन सबके अलग–अलग जानकार। इसतरह जैसे ज्ञान के बहुतेरे प्रकार हैं वैसे हर प्रकार के ज्ञान में बड़ी विविधता है।

सभी किस्म के ज्ञानों को समाज में बराबर का सम्मान नहीं मिलता, न उनकी बराबर की स्थिति ही होती है। जैसे एक कृषि वैज्ञानिक को किसान की तुलना में बहुत अधिक पैसा और सम्मान दोनों ही मिलता है। वान्यिकी के जानकारों की आर्थिक और सामाजिक स्थिति आदिवासियों से न जाने कितनी बेहतर होती है।

इंजीनियरों को कारीगरों से बहुत ज्यादा पैसा और सम्मान दोनो ही मिलता है। आध्यात्मिक ज्ञानियों में भी बड़ा भेद है। व्यापारियों और अंग्रेजी बोलने वालों को जीवन का रहस्य बताने वाले पंचतारा संस्कृति में रहते हैं। ये हमेशा ही ए.सी. में रहते हैं। जबकि गाँव–गाँव घूमने वाले, दूरदराज में आश्रम बनाकर रहने वाले संत–महात्माओं की वास्तविक स्थिति कौन नही जानता? क्या कारण है कि ज्ञान के प्रकारों में , उनके जानकारों में और उनकी समझ की विधियों में इतना ज्यादा सामाजिक भेद है।

यह भेद समझने के लिये हमें ज्ञान क्षेत्र का पूँजी और सत्ता के साथ क्या सम्बन्ध है यह समझना होगा। इसके लिये एक मूल बात हमें समझनी होगी वह यह कि जिस ज्ञान व समझ से लोगों की भलाई होती है, जनहित के कार्य होते हैं, मनुष्य की सेवा होती है, उन्हें आज की समाज व्यवस्था में पैसा कम मिलता है और सम्मान भी कम मिलता है। तथा ज्ञान के वे प्रकार और समझ के वे तरीके जो पूँजीपति वर्गों को मुनाफा कमाने के रास्ते देते हैं , एक छोटे से वर्ग के हाथ में सत्ता केन्द्रित करने में सहायता देते हैं, वे सम्मान पाते हैं , आर्थिक और सामाजिक प्रतिष्ठा के हकदार हो जाते हैं।

पूँजीवादी व्यवस्था में यह भरपूर कोशिश की गई कि जनहित के ज्ञान के तरीके ही खत्म कर दिये जायें। यूरोप और अमेरिका में, जहाँ पूँजीवाद सबसे ज्यादा फूला–फला तरह–तरह के ज्ञान के तरीकों को हमेशा के लिये खत्म कर दिया गया। साइंस के रूप में एकमात्र ज्ञान को प्रतिष्ठा दी गई और अब जब वह भस्मासुर का रूप ले चुका है, उनके पास कोई रास्ते नही बचे हैं। समाज में ज्ञान की विविधता में ही जनहित और मनुष्य की मुक्ति का स्रोत है। किन्तु इसके लिये यह जरूरी है कि यह विविधता पूँजी और सत्ता के साये के बाहर हो।

कम्प्यूटर ओर इंटरनेट के आने के बाद से यह बात तो चर्चा में आई है कि सभी ज्ञान के प्रकार और तरीके काम के होते हैं और ज्ञान का दर्जा पाने के लायक होते हैं। लेकिन निहित स्वार्थों से संचालित यह अर्थ व्यवस्था उनकी आर्थिक प्रतिष्ठा के

रास्ते नही खुलने देती। जैसे कम्प्यूटर–इंटरनेट के कारोबार बड़े–बड़े पूँजीवादी प्रतिष्ठानों व निगमों के कब्ज़े में हैं। और उसमें भी केवल वही रास्ते खुलते हैं जिनसे उनका मुनाफा बढ़ता है। इसका एक बड़ा खराब नतीजा और है वह यह कि बड़े पैमाने पर जैव, कला, हुनर व ज्ञान की विविधता नष्ट हो रही है। क्योंकि जिसकी उपयोगिता सिद्ध हो जाय उसपर पूँजी की दुनिया अपना पूरा कब्ज़ा जमाना चाहती है, औरों के पास से उसे हटा देना चाहती है। दूसरी बात यह है कि कम्प्यूटर का कारोबार 95 फीसदी अंग्रेजी में होता है और इसलिये तरह–तरह के जानकारों के लिये नई आर्थिक गतिविधि के रास्ते इसके मार्फत नही खुलते। इन बाधाओं को दूर करना ज्ञान की राजनीति के महत्वपूर्ण कार्य हैं। ऐसा कर के ही वह स्थिति बन सकती है जिसमें ज्ञान के सभी प्रकार और समझ के तरीके सामाजिक और आर्थिक प्रतिष्ठा के आधार बन सकें।

3

ज्ञान के स्थान

समाज में ज्ञान के चार प्रमुख स्थान हैं– सामान्य जीवन, धर्म सम्प्रदाय, विश्वविद्यालय (आधुनिक शिक्षण संस्थान) और कम्प्यूटर–इन्टरनेट। मोटे तौर पर इन स्थानों के ज्ञान को क्रमशः लोकविद्या, धार्मिक अथवा आध्यात्मिक ज्ञान, साइंस और ज्ञान–प्रबन्धन कहते हैं। इन चारों स्थानों पर ज्ञान की गतिविधि का रूप, प्रकार, सार, उद्देश्य और दर्शन व गति इत्यादि एक दूसरे से भिन्न हैं। सूचना युग के साथ सामने आयी चुनौतियों का सामना कर पाने के लिये ज्ञान के इन स्थानों के आपसी सम्बन्ध की थोड़ी समझ होना आवश्यक है।

समाज में तरह–तरह की स्पर्धायें चलती रहती हैं, अपने–अपने को एक दूसरे से आगे या कुछ अधिक होने के दावे पेश होते रहते हैं। राजनीति, धर्म और अर्थ के क्षेत्र में तो यह विशेष रूप से पाया जाता है। उसी तरह ज्ञान के क्षेत्र में भी एक स्पर्धा का माहौल मिलता है। विशेष रूप से ज्ञान की गतिविधियों के अलग–अलग स्थान खुद के सर्वोच्च होने के दावे पेश करते हैं। लेकिन जिस तरह धर्म, अर्थ या राजनीति की क्षेत्रों की ये होड़ समाज हित में नहीं होती तथा जनहित को ताक पर रखकर व्यक्तिगत स्वार्थ, संकीर्ण हितों और निहित स्वार्थों को बढ़ावा देती हैं उसी तरह ज्ञान के क्षेत्र की होड़ भी मनुष्य और समाज को जनहित और समाजहित से विमुख करती है। समाज में ज्ञान के प्रमुख स्थानों की चर्चा में हमारा यही उद्देश्य है कि उनके आपसी सम्बन्धों को समझकर कैसे उन्हें आपसी सहयोग की भूमिका में ला सकें और नये युग की चुनौतियेां का सामना कर पाने के लिए ज्ञान का व्यापक आधार तैयार किया जा सके।

लोकविद्या पूरे समाज में फैला हुआ ज्ञान है। किसानों, कारीगरों, महिलाओं, छोटा धन्धा करने वालों, आदिवासियों, स्वास्थ्य–रक्षा कार्यकर्ताओं सभी के पास अपना–अपना ज्ञान होता है

और उनके अपने–अपने सन्त–महात्मा–गुरू और सामाजिक नेता उस ज्ञान का दर्शन भी उन्हें देते रहते हैं। किसान किस कृषि विश्वविद्यालय से पढ़कर आता है ? कारीगर इंजिनियरिंग कालेज को देखा भी नहीं होता। आदिवासी क्या वान्यिकी के किसी प्रशिक्षण से गुजरे होते हैं ? छोटे–छोटे धन्धे करने वाले कहाँ से प्रबन्ध शास्त्र सीखे होते हैं ? महिलाओं को क्या कहीं किसी स्कूल में बच्चों को बड़ा करने या खाना बनाने का प्रशिक्षण दिया जाता है? नहीं। ये सब किसी भी शिक्षा संस्थान में गये बगैर ही अपने–अपने क्षेत्रों का काम दक्षता से कर रहे होते हैं। ऐसा भी नहीं है कि ज्ञान के और स्थानों से ये कोई दुश्मनी रखते हों। विश्वविद्यालय वाले इन्हें अज्ञानी समझते हैं लेकिन ये विश्वविद्यालय से शिक्षा लेकर आने वालों से जो कुछ भी सीखने योग्य होता है सीखते हैं, उससे गुरेज नहीं करते। क्या यह सम्भव नहीं है कि जिस तरह लोकविद्या का दृष्टिकोण विश्वविद्यालय की विद्या को सम्मान से देखता है वैसे ही विश्वविद्यालय भी लोकविद्या को पूरा सम्मान दे?

धर्म–सम्प्रदाय विद्या की दृष्टि से अलग–थलग पड़े हुए हैं। ये न विश्वविद्यालय से कोई सकारात्मक सम्बन्ध बना पाते हैं और न आम जनता से ही। लोगों की धार्मिक सोच लोकविद्या से मिली–जुली होती है, धर्म–सम्प्रदायों से कम रिश्ता रखती है। लोगों के धर्म में लोकविद्या के ही गुण होते हैं। वह उनके अनुभव, जरूरत और तक्र बुद्धि से संचालित होता है तथा ठंडी और ताजी हवाओं के लिए लोकधर्म की खिड़कियां हमेशा खुली होती हैं। धर्म–सम्प्रदायों की विद्या भी उनके विचार के अनुरूप, साम्प्रदायिक और संकीर्ण होती है। इसलिए यह अलग–थलग भी पड़ी रहती हैं। धार्मिक सम्प्रदायें पर यह दबाव होना चाहिए कि वे अपनी विद्या को लोकहित और लोकविद्या की कसौटी पर कसें और उसके अनुरूप परिवर्तन लाये।

ज्ञान के रूप में विश्वविद्यालय का सबसे ज्यादा बोलबाला है। ये समाज में ज्ञान के वितरण ओर विस्तार के सबसे इज्ज़तदार स्थान हैं। सभी नौजवानों की इच्छा विश्वविद्यालय में पहुँचने की

होती है। लेकिन विश्वविद्यालयों का ढाँचा यों बनाया गया है कि उसमें बहुत कम नौजवान ही पहुँच पायें। विश्वविद्यालय की ज्ञान दृष्टि भी पूरी तरह साइंस से प्रभावित होती है। उसके इंजीनियरिंग, कला, समाज विज्ञान, सभी विभाग साइंस की छाया में चलते हैं। इसके चलते वह अपने विद्यार्थियों में ऐसे मूल्यों का विकास करते हैं कि वे लोकविद्या को तिरस्कार के भाव से देखने लगें। विश्वविद्यालय के सामने आज सबसे बडी चुनौती एक तरफ लोकविद्या और दूसरी तरफ कम्प्यूटर–इन्टरनेट की ज्ञान गतिविधि से सकारात्मक रिश्ता बनाने की है। ऐसे रिश्ते बनने से कुल मिलाकर ज्ञान की गतिविधियों से संकीर्णता दूर होगी।

कम्प्यूटर–इन्टरनेट के आ जाने के बाद से ज्ञान का यह एक नया स्थान बना है। ज्ञान प्रबन्धन का एक नया शास्त्र बना है। यह खुद को ज्ञान का एक रूप बतलाता है। इसके आ जाने से ज्ञान के क्षेत्र में बड़ी खलबली मची है। तीन बातें विशेष ध्यान देने लायक हैं।

- यह साइंस को सर्वोच्च ज्ञान का स्थान नहीं देता और विश्वविद्यालय को ज्ञान का प्रमुख स्थान नहीं मानता।
- यह लोकविद्या को मान्यता देता है। जिस बहुजन समाज को विश्वविद्यालय अज्ञानी करार देता था उसे यह पारम्परिक ज्ञान का स्वामी मानता है।
- ज्ञान के प्रति इसका दर्शन सत्य की दृष्टि नहीं अपनाता बल्कि उपयोगिता की दृष्टि अपनाता है।

ये तीनों बातें आपस में जुड़ी हुई हैं और इनके जबर्दस्त नतीजे सामने आ रहे हैं। विश्वविद्यालय और वहाँ की ज्ञान की गतिविधि राजसत्ता और आधुनिक जीवन प्रणाली के साये में चलती थी। अब इनके साथ बहुराष्ट्रीय निगम भी प्रकट रूप से जुड़ गये हैं। पारम्परिक ज्ञान के नाम पर इंटरनेट पर एक बहुत बड़ा ज्ञान का भण्डार बना लिया गया है लेकिन सारी बहस इस बात की है कि इस ज्ञान के भण्डार का मालिक कौन है? और मुनाफे के लिए

इसका प्रयोग कैसे किया जाय ? एक पैसे की भी जनहित की चर्चा नहीं है।

लोकविद्या के घरों से आने वाले नौजवान इस सब में अपनी जगह कहाँ बनायें और समाज के बारे में कैसे सोचें? ज्ञान, न्याय, शक्ति और लोकहित की सही अवधारणायें वही बना सकता है और समझ सकता है जो लोकविद्या और सामान्य जीवन को इज्जत देता है। दिन–रात कम्प्यूटर पर बैठना या प्रयोगशाला में जिन्दगी बिता देना यह किसी किसान या कारीगर जिन्दगी से अधिक इज्जत की बात है ऐसा सोचने में बहुत बड़ी खोट है। एक में पैसा है और दूसरे में नहीं। फर्क बस यही है। और यह अंतर भी कोई स्वाभाविक या प्राकृतिक अंतर नहीं है बल्कि सर्वथा कृत्रिम है। लोकविद्या के शोषण पर विश्वविद्यालय में और इंटरनेट पर ज्ञान और उसका प्रबन्धन फलता–फूलता है। लोकविद्या के घरों से आने वाले नौजवानों का यह कर्तव्य बनता है कि इस स्थिति को पूरी तरह बदल दें। इसके लिए उन सब रास्तों को अपनाना होगा जो ज्ञान को अंग्रेजी , सत्ता और पूँजी के घेरे से मुक्त करें। ज्ञान की गतिविधियों के सभी स्थान बराबर हों यह किसी भी ज्ञान मुक्ति आंदोलन के उद्देश्यों में होना चाहिए।

4

ज्ञान का निर्माण

सामाजिक परिवर्तन और ज्ञान का निर्माण व नवीनीकरण एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। नये ज्ञान से नई स्थितियों का निर्माण होता है और नई परिस्थितियों की माँग के चलते नये ज्ञान का निर्माण होता है। समाज में ज्ञान के स्थान ही ज्ञान के निर्माण के स्थान भी हैं। जलवायु, कच्चा माल, तकनीक, बाजार, पूँजी, अर्थव्यवस्था, इनमें से किसी में भी आया परिवर्तन उत्पादन के नये तरीकों, नई व्यवस्थाओं और नये ज्ञान के निर्माण की माँग करता है और जब नया ज्ञान अस्तित्व में आता है तो वह तमाम व्यवस्थाओं और परिस्थितियों में परिवर्तन की माँग करता है। मोटे तौर पर कहें तो ज्ञान के निर्माण के तीन प्रमुख कारक अथवा आधार हैं। ये हैं—ज़रूरत, अनुभव और तर्कबुद्धि।

किसान, कारीगर, वैज्ञानिक, शिक्षक, राजनीतिक कार्यकर्ता सभी ज़रूरतों के जवाब में अपने व अन्य लोगों के अनुभवों के आधार पर अपनी तर्कबुद्धि का इस्तेमाल करके उपलब्ध ज्ञान का नवीनीकरण करते हैं, कुछ नया उसमें जोड़ते हैं और पहले की समझ का जो भाग अप्रासंगिक हो जाता है उसे हटा देते हैं या छोड़ देते हैं। विश्वविद्यालय ज्ञान के निर्माण के बहुचर्चित स्थान हैं। राष्ट्र की ज़रूरतों के अनुकूल सरकार नीति बनाती है, विश्वविद्यालयों के सामने समस्या रखती है, उसके लिये पैसे आवंटित करती है तथा वैज्ञानिक एवं शोधकर्ता, विज्ञान जगत के अनुभवों (जो प्रकाशित होते हैं) के आधार पर अपनी तर्कबुद्धि से खोजें करते हैं, नये ज्ञान का निर्माण करते हैं। राष्ट्र की ज़रूरतें किसी भी क्षेत्र की हो सकती हैं जैसे कृषि उत्पादन, सिंचाई की व्यवस्था, बिजली उत्पादन में बढ़ोत्तरी, सस्ता कपड़ा, प्रतिरक्षा, नये किस्म के साफ्टवेअर, कुछ भी। ज़रूरत के हिसाब से जानकार काम पर लगते हैं। एक छोटे रूप में किसान और कारीगर भी

यही करते हैं। लकड़ी बदल जाय, तो खिलौना बनाने वाले अपने तरीके बदल लेते हैं। प्लास्टिक आ गया तो उत्पादन के नये तरीके ईजाद हो गये। ईंधन बदल जाय तो तापमान प्राप्त करने के लिये भट्ठी की बनावट बदल जाती है। सिंचाई की जल आपूर्ति बढ़ जाय तो नये फसल चक्र आस्तित्व में आते हैं। बीज बदल जाय तो खेती की विधि में बड़ा परिवर्तन आता है। बाजार की माँग के अनुरूप बे–मौसम उत्पादन के तरीके ईजाद हो जाते हैं। नये ज्ञान के बगैर नया अभ्यास टिकाऊ नही होता। यानि टिकाऊ अभ्यास का अर्थ ही है कि उसके आधार में ज्ञान है। किसान और कारीगर के उत्पादन कार्यों को केवल अभ्यास, तकनीक या संचित जानकारी के रूप में देखना बहुत बड़ी भूल होगी। निहित स्वार्थों से प्रेरित होकर ऐसा प्रचार किया गया है जिससे कि किसान और कारीगर का समाज में स्थान न बन सके। ऐसे प्रचार का प्रतिकार ज़रूरी है। यह समझना ज़रूरी है कि खेती और घरेलू औद्योगिक उत्पादन दोनो ही ज्ञान आधारित गतिविधियाँ हैं तथा इन कामों को करने वाले अपनी ज़रूरतों, अनुभव और तर्कबुद्धि के बल पर सतत ज्ञान का निर्माण व नवीनीकरण करते रहते हैं।

ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया के दो प्रमुख घटक हैं– प्रयोग और सहयोग। विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों में प्रयोगशालायें होती हैं। प्रयोग में मतलब की जानकारी रखने वाले सहयोग करते हैं। इन दोनो ही क्रियाओं में कम्प्यूटर के आ जाने से बड़ी बढ़ोत्तरी हुई है। कम्प्यूटर अपनी संगणन क्षमता के बल पर बहुत बार यह बता पाता है कि कौन से प्रयोग बे–नतीजा रहेंगे। नतीजा तो कम्प्यूटर नही बता सकता लेकिन कौन से प्रयोग नतीजा दे सकते हैं इसकी पहचान करने में खासी मदद करता है। इंटरनेट ने जानकार लोगों के बीच विश्व स्तर पर सहयोग संभव बना दिया है। हांलाकि यह सहयोग अभी बहुत देखने को नही मिलता है। इसका बड़ा कारण यह है कि विश्वविद्यालयों और शोध संस्थानों की ज्ञान निर्माण प्रक्रिया पर मुनाफा, बाजार और पूँजी की छाया है। तथा यह छाया दिन ब दिन गहरी होती जा रही है। प्रयोग तो किसान और कारीगर भी करते हैं। आपस में सहयोग भी करते हैं।

लेकिन यह सब जल्दी दिखाई नही देता। क्योंकि उनकी ये क्रियायें परिवार, गाँव या समुदाय के मार्फत होती रहती हैं। इन सीमाओं के चलते उनके प्रयोग और सहयोग भी सीमित प्रकृति के होते हैं। लेकिन उनकी ज्ञान निर्माण प्रक्रिया में गरीब आदमी का हित और दर्द एक स्तर पर संयोजित होता रहता है। अधिकतर ये प्रयोग और सहयोग बचाव की मुद्रा में होते हैं, बड़ी–बड़ी कम्पनियों और बड़े बाजार की मार से अपने को बचाने के लिये किये गये उपक्रम के रूप में। यदि खेतों ओर घरेलू कारखानों की ज्ञान निर्माण प्रक्रिया की पारिवारिक, गाँव और समुदाय की सीमायें हम तोड़ सकें तो लोकहित और लोकविद्या के विकास का वह क्रम अस्तित्व में आ सकता है जिसका अभी तक के सामाजिक कार्यकर्ताओं और क्रांतिकारियों ने केवल सपना ही देखा है। ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया के उन सार्वजनिक रूपों की खोज होनी चाहिये जो मुनाफे, बाजार और पूँजी के साये में नहीं हैं और न गाँव और समुदाय की सीमाओं में बँधे हैं।

कम्प्यूटर–इंटरनेट पर ज्ञान प्रबन्धन का ज्ञान विकसित हो रहा है। यह सभी किस्म के ज्ञान निर्माण के स्थलों और प्रकारों को एक कड़ी में पिरोने की कोशिश करता है। यह आभास देता है कि इस पर बाजार और पूँजी की पकड़ नही है। शायद 15–20 फीसदी ऐसा हो भी। इसमें गाँव और समुदाय की सीमायें तोड़ने की क्षमता दिखाई देती है लेकिन जब तक यह अंग्रेजी में होता रहेगा तब तक वह भी संभव नही है। हिन्दी में कम्प्यूटर हो और ज्ञान की सही राजनीति हो तो गाँव–गाँव में, हर छोटे बड़े कारखाने में और विश्वविद्यालय और शोध संस्थानों में होने वाली ज्ञान निर्माण की प्रकियाएँ एक ऐसी सकारात्मक कड़ी में पिरोई जा सकेंगी जो हमारे समाज को दूसरों के लिये एक नज़ीर बना देंगे।

5

ज्ञान का संगठन

जब से कम्प्यूटर आया है ज्ञान के संगठन की बात जोरों पर है। यानि किसी भी विषय के बारे में कोई भी जानकारी चाहिये तो उसे एक व्यवस्थित तरीका अपनाकर कम्प्यूटर से प्राप्त किया जा सकता है, बशर्ते उस विषय का ज्ञान कम्प्यूटर में संगठित कर दिया गया हो। पिछले 50 वर्षों में लगभग सभी विषयों का ज्ञान कम्प्यूटर में संगठित किया गया है। लेकिन साथ में यह सवाल उठाया जाता रहा है कि ज्ञान के नाम पर जो कम्प्यूटर में संगठित है क्या वह केवल सूचनाओं का संगठन नहीं है? ज्ञान और सूचना के बीच अंतर पर खूब बहस हुई है और अभी भी जारी है। जानकारी को ज्ञान का हिस्सा माना जाता है किन्तु उसे ही ज्ञान मान लिया जाय इस पर बड़ी आपत्तियाँ हैं। कहा जाता है कि ज्ञान में एक समझ की बात होती है, एक दृष्टि का समावेश होता है, जबकि सूचना या जानकारी इन बातों से निरपेक्ष होती है। इस बहस में कुछ दार्शनिक तत्व हैं और कुछ रोजमर्रे के जीवन को प्रभावित करने वाली बातें हैं। सार्वजनिक तौर पर इस बहस का कोई नतीजा निकलेगा, सही और गलत का फैसला होगा ऐसा शायद न हो। वैसे भी जिस अर्थ में इन शब्दों का प्रयोग व्यापक होता चला जायेगा वही अर्थ ठहर जायेगा बाकि लुप्त हो जायेंगे। पहले भी ऐसा हुआ है। जब यांत्रिक विज्ञान जिसे साइंस कहते हैं आया था तब तरह–तरह की विद्यायें समाज में उपस्थित थीं। उन विद्याओं के अपने मूल्य होते थे और मनुष्य हित से एक रिश्ता होता था। नया साइंस मूल्य निरपेक्ष था और मनुष्य हित के प्रति उदासीन था। इसलिए इसे ज्ञान का दर्जा देना आसान नहीं था। लेकिन समयांतर में यह विश्वव्यापी हुआ और इसने खुद को सर्वोच्च ज्ञान का दर्जा भी दिया। कम्प्यूटर और सूचना के युग में ज्ञान के क्षेत्र में सूचना सर्वव्यापी होने के लिए आकुल है और इस स्थिति को समझना और उसकी चुनौतियों को स्वीकार करना परिवर्तन के कार्यकर्ताओं का कर्तव्य है।

24

कम्प्यूटर में ज्ञान का संगठन शुरू होने से उन सब ज्ञानों को इज्जत मिलना शुरू हो गई है जो साइंस के जमाने में तिरस्कृत थे। कृषि, वान्यिकी अथवा तकनीक आदि का जो ज्ञान किसानों, आदिवासियों और कारीगरों के पास है वह कम्प्यूटर पर चढ़ रहा है। स्वास्थ्य के क्षेत्र में तो बहुत बड़ी हलचल है। तमाम पौधों, जड़ी–बूटियें , पत्तों, फलों और फूलों के स्वास्थ्य कारक गुणों का ब्यौरा कम्प्यूटर में इकट्ठा किया जा रहा है। इन विद्याओं की खास बात यह रही है कि उनके जानकार जिस समझ और जिन मूल्यों के साथ काम कर रहे हैं उनके चलते ये विद्यायें मनुष्य हित का, पर्यावरण और स्थितिकीय का खयाल रखती हैं। अब जब वे सूचनाओं के रूप में कम्प्यूटर में संगठित हो जायेंगी तो उनके इस्तेमाल के ये गुण खत्म हो जायेंगे। जिसे पारम्परिक ज्ञान कहा जाता है वह यों संगठित हो जायेगा कि उसका इस्तेमाल पूंजीवादी तंत्र के हाथ में चला जायेगा। कम्प्यूटर में संगठन से ज्ञान के ऊपर पूँजी और सत्ता के नियंत्रण के व्यापक रास्ते खुले हैं। इससे ज्ञान के शोषण के भी नये रास्ते खुले हैं। इस स्थिति का मुकाबला करने के कौन से विचार आज समाज में हैं?

कम्प्यूटर के आने के पहले भी ज्ञान का संगठन तो होता ही था। साइंस और उसके पहले के ज्ञान भी लिखकर संगठित किये गये थे। किताबों में, शोध पत्रिकाओं में, प्रकाशन के माध्यम से, हस्तलिखित पांडुलिपियों में या और पहले जायें तो ताम्रपत्रों पर, पत्थरों पर लिखकर और मौखिक परम्पराओं में ज्ञान का संगठन हुआ करता था। प्रकाशित ज्ञान सामग्रियों को एक स्थान पर एकत्र करके पुस्तकालय और वाचनालय बनाकर यह ज्ञान उपलब्ध कराया जाता था। ज्ञान के संगठन के लिये उसका लिखित होना भी जरूरी नही होता। उदाहरण के लिये लोकविद्या अथवा किसानों, कारीगरों, आदिवासियों या महिलाओं के पास का ज्ञान अधिकतर अलिखित है। किंतु इसे सर्वथा असंगठित नहीं कहा जा सकता। आखिरकार अगर यह बिलकुल संगठित न हो तो दूसरों को कैसे सिखाया जा सकता है, पीढ़ी–दर–पीढ़ी यह जिन्दा कैसे रह सकता है, उसका नवीनीकरण कैसे हो सकता है? जबकि यह सब

लोकविद्या के साथ होता ही रहता है। स्थानीय समाज का संगठन का प्रकार अलग होता है। अपने यहाँ की परम्परा में लिखित शब्द को वैसी प्रमुखता नहीं रही जैसी यूरोपीय परम्पराओं में थी। कहते हैं कि यहाँ इतिहास कभी नहीं लिखा गया। यह भी कि बड़े–बड़े व्यापारिक समझौते मौखिक हुआ करते थे। ज्ञान के संगठन की बात करते समय संगठन के अर्थ पर गहराई से विचार करना चाहिए।

संगठन का जो अर्थ हम स्वीकार करेंगे उसके अनुरूप अनायास ही, चाहे–अनचाहे, एक विश्वदृष्टि से यानि कि सभी बातों को समझने और समझाने के एक तरीके के साथ हम बँध जायेंगे। अभी हमारे सामने ज्ञान के संगठन के तीन स्पष्ट प्रकार हैं। एक कम्प्यूटर में, दूसरा प्रकाशित सामग्री के जरिये पुस्तकालय में और तीसरा लोगों के बीच समाज के रिश्तों में। जरूरी नहीं कि इनमें से एक ही चुना जाये। सत्य, न्याय और मानवहित की कसौटियों पर खरा उतरे ऐसा ज्ञान का संगठन हमें चाहिए। ज्यादा उम्मीद है कि उपरोक्त तीनों तरीकों का एक मिश्रित रूप ही निर्माण करने योग्य होगा।

6

ज्ञान का प्रबन्धन

सूचना और संचार प्रौद्योगिकी और उसके साथ इंटरनेट के आने के बाद से ज्ञान के प्रबन्धन का एक नया शास्त्र अस्तित्व में आया है और विकसित हो रहा है। ज्ञान का प्रबन्धन पहले भी होता था और आज भी होता है, कम्प्यूटर और इंटरनेट इसके लिये ज़रूरी नही होता। स्कूल या कालेज ज्ञान के प्रबन्धन के प्रकट स्थान हैं जहाँ इस प्रबन्धन का अर्थ है उसे विभिन्न भागों में विभाजित करना, संगठित करना, विद्यार्थियों को ज्ञान देना, अमूर्त और व्यावहारिक ज्ञान में अंतर करना, अमूर्त ज्ञान को सैद्धान्तिक क्रियाओं से और व्यावहारिक ज्ञान को उत्पादन की क्रियाओं से जोड़ना सीखना इत्यादि। विश्वविद्यालयों और शोध संस्थाओं में होने वाला अनुसंधान भी ऐसे ही ज्ञान प्रबन्धन का विषय है। किसान और कारीगर समुदायों के अपने–अपने तरीके होते हैं। तकनीक और प्रक्रियाओं की जानकारी या औजारों और कच्चे माल की जानकारी या फिर बाजार और सरकार की नीतियों की जानकारी पर सहयोग, विचार विमर्श, एक–दूसरे तक पहुँचाने की क्रियायें, एक–दूसरे से सीखने और अगली पीढ़ी तक ज्ञान को पहुँचाने की क्रियायें उनके ज्ञान के प्रबन्धन का हिस्सा होती हैं। ये सब प्रबन्धन के प्रकार हैं। जिस तरह संस्थाओं, बाजारों या बड़े–बड़े कारखानों का प्रबन्धन होता है वैसे ही ज्ञान का प्रबन्धन होता है, थोड़ा उनसे मिलता–जुलता और थोड़ा उनसे अलग, वस्तु विषय के अलग होने के चलते। लेकिन सूचना युग में ज्ञान के प्रबन्धन का अर्थ ही अलग है। व्यक्तिगत कम्प्यूटर की बहुलता, उसकी तेज़ गति व विराट भण्डारण क्षमता, इन्टरनेट की सम्पर्क क्षमता और साफ्टवेयर का सिद्धांत और अभ्यास ये सब मिलकर ज्ञान के प्रबंधन की नई संभावनायें तैयार करते हैं। वैश्वीकरण की व्यवस्थाओं के निर्माण और उनके संचालन व नेटवर्क सोसायटी को आकार देने के शास्त्र

के रूप में इस नये ज्ञान प्रबंधन का विकास हो रहा है। यह एक नई विद्या के रूप में आकार ले रहा है जो सभी विद्याओं का समाज में अपने नीचे स्थान निश्चित करती है, जिनमें पहले के ज्ञान प्रबंधन के तरीके भी शामिल हैं।

ज्ञान का प्रबन्धन इंटरनेट पर जानकारियाँ (लिखित शब्द, दृश्य, ध्वनि) डालने, उन्हें संगठित करने, अलग–अलग ढंग से उन्हें व्यवस्थित करने, उन्हें खोजने और दुनिया में बैठे किसी भी व्यक्ति के साथ वार्ता सहयोग आदि करने का शास्त्र है। अपने ठोस रूप में यह एक ऐसा शास्त्र है जिसके चलते कोई भी व्यक्ति मौके पर आवश्यक जानकारी को एक कम्प्यूटरीकृत तरीके से हासिल कर सकता है। यानि यह सब कर पाने वाले व्यक्ति को इस शास्त्र का जानकार होना जरूरी नही है बल्कि इस शास्त्र के जानकार ऐसे साफ्टवेयर तैयार करते हैं जिनके बल पर मामूली विशेषज्ञता से यह सब कार्य किये जा सकते हैं। दो–एक उदाहरण से बात साफ हो जायेगी।

1– यदि किसी बहुत बड़ी कम्पनी में बाजार की व्यवस्था देखने वाले अपनी किसी समस्या का हल खोज रहे हैं तो ज्ञान प्रबन्धन का साफ्टवेयर उनके सामने कम्पनी के अन्य विभागों में होने वाले काम या पहले कभी किये गये काम की वे सब जानकारियाँ लाकर रख देगा जिनसे उन्हें उनके काम में मदद हो सके। मेज पर बैठे–बैठे तुरंत इतनी प्रासंगिक जानकारियाँ मिल सकती हैं जितनी इस तकनीक के बगैर कई दिनों की दौड़–भाग से भी हासिल नहीं हो सकतीं।

2– अंतरिक्ष शोध के किसी कार्य में गणित का कोई बहुत कठिन प्रश्न अगर सामने आता है तो उससे मिलते–जुलते प्रश्नों के हल इस तकनीक द्वारा तुरन्त उपलब्ध कराये जा सकते हैं जिससे सामने के सवाल पर सही पकड़ बैठाने में मदद हो सकती है।

3– जैव प्रौद्योगिकी के शोध और विकास में ज्ञान प्रबन्धन का इस्तेमाल करके उस क्षेत्र से सम्बन्धित पारम्परिक ज्ञान का इस्तेमाल प्रभावी ढंग से किया जा सकता है।

4– कलात्मक वस्तुओं के डिज़ाइन में परम्परागत डिज़ाइन और उनके जानकारों के जीवंत ज्ञान का इस तकनीक द्वारा इस्तेमाल किया जाता है।

5– जानकारियाँ व सूचनायें दर्ज करने से ले कर वस्तुओं के उत्पादन तक सभी किस्म के कामों को दूर–दराज के इलाकों में करवाना (आउट सोर्सिंग) ज्ञान प्रबन्धन पर ही आधारित है।

ऐसे और अनेक क्षेत्रों के उदाहरण दिये जा सकते हैं। इनमें रोज इज़ाफा हो रहा है। यह विद्या या तकनीक के प्रबन्धन का एक नया और इंटरनेट आधारित कारगर तरीका तो है ही लेकिन यह भी सच है कि यह अपने को ज्ञान का आधुनिकतम रूप बताता है। शायद यह इस युग की विडम्बना ही है कि प्रकृति व उसकी प्रक्रियाओं के ज्ञान, समाज व उसकी प्रक्रियाओं के ज्ञान और मनुष्य से सम्बन्धित ज्ञान के ऊपर सर्वश्रेष्ठ ज्ञान के रूप में ज्ञान का प्रबन्धन प्रतिष्ठित हो रहा है। और यह भी पूँजी और मुनाफे के गठजोड़ में। यह किसी भी हालत में मनुष्यता के लिए शुभ संकेत नहीं है। वास्तव में शोषण के एक नये त़ंत्र की नींव पड़ रही है लेकिन इसके बारे में हम लोग आगे बात करेंगे।

ज्ञान का प्रबन्धन तरह–तरह की ज्ञान क्रियाओं, वस्तुओं आदि के एक खास किस्म के चित्रण का तरीका है। यह इस चित्रण के मार्फत एक मायावी दुनिया का निर्माण करता है। पश्चिम की बौद्धिक दुनिया में यह कहने वाले बहुत से लोग हैं कि यह मायावी दुनिया वास्तविक दुनिया से अधिक सुंदर है। और यह कि अधिक वास्तविक भी है। नैतिकता जरूर इस दुनिया में वास्तविक दुनिया से कम मानी जाती है। पश्चिम में भी अधिकांश लोग इसे न अधिक वास्तविक मानते हैं और न अधिक सुंदर और सामाजिक नैतिकता की सरहद के पार ही इसे देखते हैं। इन्टरनेट पर काम करने वाले इन बातों को थोड़ा बहुत समझते हैं लेकिन ज्यादा

नही। ज्ञान का प्रबंधन इस मायावी दुनिया के निर्माण की विद्या है। यह वह विद्या है जो वास्तविक दुनिया और इंटरनेट की मायावी दुनिया के बीच आवा–जाही के मार्ग बनाती है और उन मार्गों पर चलने की गति व उसके नियंत्रण दोनो के ही उसूल बनाती है। इस दूसरे कार्य में पूँजी और सत्ता के साथ इसका सघन रिश्ता देखा जा सकता है। वास्तव में ज्ञान का प्रबंधन एक मायावी विद्या है जिसे नियंत्रित करना किसी भी सच्चे समाज परिवर्तन का लक्ष्य होना होगा।

सरल शब्दों में कहें तो यह सूचनाओं का संसार है। सूचना के इस अर्थ में मेरा फोटो मेरे बारे में एक सूचना है। भौतिक शास्त्र के नियम भौतिक दुनिया के बारे में एक सूचना हैं। किन्हीं फूलों अथवा पौधों के अर्क से होने वाले फायदों या नुकसान का वर्णन वनस्पति की दुनिया और वैद्यकी के बारे में एक सूचना है। सारी बातों को समेटते हुए कहा जाय तो ज्ञान कम्प्यूटर–इंटरनेट में सूचना का रूप ले लेता है। ज्ञान की दुनिया सूचना की दुनिया बन जाती है। और इसे ही ज्ञान–प्रबंधन के उदय के साथ ज्ञान की दुनिया कहा जाने लगता है। इस सूचना की दुनिया के संगठन की विद्या ही ज्ञान–प्रबंधन है। यही वास्तविक दुनिया और सूचना की दुनिया के बीच रिश्ते और रास्तों को बनाता है। जिसतरह वास्तविक दुनिया में लोग विचरते हैं और तरह–तरह के काम करते हैं उसी तरह सूचना की दुनिया (इंटरनेट) में भी लोग विचरते हैं और तरह–तरह के काम करते हैं। बहुत से काम जो हम वास्तविक दुनिया में करते हैं उस दुनिया में नही कर सकते। उसी तरह उस दुनिया में बहुत से ऐसे काम किये जा सकते हैं जो वास्तविक दुनिया में नही किये जा सकते। लेकिन ऐसे तमाम कार्य वास्तविक दुनिया के नैतिक और भौतिक दोनो ही किस्म के नियमों और मानदण्ड़ों का विस्तृत उल्लंघन करते हैं। इसीलिये इसे मायावी दुनिया कहा जाता है।

आज स्थिति यह है कि ज्ञान प्रबंधन के लिये बाजार में सबसे ज्यादा पैसा है, इसका काम करने वालों को सबसे ऊँची तनख्वाहें हैं और उससे सम्बन्धित उद्योगों में सबसे ज्यादा मुनाफा।

30

समाज में विद्या के रूप में सबसे अधिक सम्मान फिलहाल ज्ञान–प्रबंधन को नही है लेकिन इसका स्थान अन्य विद्याओं की तुलना में अधिक ताकतवर बनता जा रहा है। अर्थ और सत्ता के चलते सबसे अधिक सम्मान का दावा भी यह अवश्य पेश करेगा। जितना समय यह दावा पेश करने और वैसी स्थिति समाज में बनने में लग सकता है उतना ही समय परिवर्तन के कार्यकर्त्ताओं के पास है।

7

ज्ञान का निजीकरण

सूचना युग के शुरू से ही ज्ञान निजी सम्पत्ति का रूप ले रहा है। यह एक विचित्र सी बात मालूम पड़ सकती है क्योंकि किसी भी सामान्य विचार या सामाजिक विचारधारा में ज्ञान के निजी होने की कोई अवधारणा नहीं है। अगर मेरा ज्ञान मुझ तक ही सीमित हो तो वह ज्ञान कैसा ? कहा जाता था कि ज्ञान के रूप में एक ऐसा धन है जो बाँटने से बढ़ता है। लेकिन अब कहा जा रहा है कि ज्ञान निजी होने से उसको बढ़ाने का प्रोत्साहन मिलता है। ज्ञान का निजीकरण कम्पनियों और व्यक्तियें के लिए अकूत सम्पत्ति संचित करने का जरिया बन रहा है। इस स्थिति को सूचना की दुनिया में ही चुनौती भी मिल रही है। मुक्त और खुले साफ्टवेअर का अभियान ज्ञान के निजीकरण को चुनौती देता है।

पेटेन्ट कानून ज्ञान के निजीकरण की कानूनी व्यवस्था देता है। लगभग सभी देशों में अब ऐसा पेटेन्ट कानून अस्तित्व में है जो वस्तुओं, उनको बनाने की प्रक्रियाओं , इन प्रक्रियाओं के ज्ञान और सभी किस्म के साफ्टवेअर (वैज्ञानिक अनुसंधान से लेकर मनोरंजन तक) को अपने घेरे में लाता है। यानि किसी के द्वारा पेटेन्ट की गयी वस्तु अथवा प्रक्रिया को आप नहीं अपना सकते। उसके ज्ञान का इस्तेमाल आप नही कर सकते। खालिस व्यक्तिगत ओर निजी इस्तेमाल के लिये भी नही। वैसे साफ्टवेअर में न आप कोई सुधार ला सकते हैं और न कॉपी (नकल) बनाकर किसी को दे सकते हैं। कानूनी पेंच में पड़े बग़ैर यह समझ लेना चाहिए कि यह सत्तारूढ़ वर्गों द्वारा ज्ञान को एक छोटे से वर्ग के हाथ में समेट देने की साजिश है जिससे उसका लाभ केवल वे ही उठा सकें।

लोकविद्या किसकी सम्पत्ति है इस पर बहुत बड़ी बहस है। वे इसे पारम्परिक ज्ञान कहते हैं और इस पर कब्जे की होड़ लगी हुयी है। बासमती के चावल, हल्दी और नीम के पेटेन्ट पर हुई

बहस से बहुत से लोग परिचित हैं। अंतर्राष्ट्रीय कम्पनियाँ समाज में प्रचलित विद्या तथा उसके तौर तरीकों और इस्तेमाल में कोई मामूली फर्क लाकर कहती हैं कि यह उनकी खोज है जिससे वह पेटेन्ट कानून के घेरे में आ जाता है और वे उसका पेटेन्ट अपने नाम कर ले सकते हैं। इसको चुनौती इतनी आसान भी नहीं होती। हल्दी के पेटेन्ट के खिलाफ लड़ाई फ्रांस की अदालत में लड़नी पड़ी थी। यूरोप और अमेरिका में पेटेन्ट कराना और उनकी अदालतों में जूझना आम आदमी या उसके किसी संगठन के लिए सम्भव नहीं है। बहस का एक मूल मुद्दा यह है कि पारम्परिक ज्ञान को किसकी सम्पत्ति माना जाय ? पारम्परिक ज्ञान के जो पक्षधर हैं उनका कहना है कि जिस समुदाय का वह ज्ञान है उसे उसका मालिक माना जाय। लेकिन ऐसे समुदाय की कानून में कोई अलग पहचान नहीं होती, इसलिए ऐसे ज्ञान पर पेटेन्ट कानून लागू नहीं हो सकता। कभी–कभी कुछ संस्थायें इन समुदायों को एक सांगठनिक पहचान देकर उनके नाम पेटेन्ट के प्रयास भी करती हैं। पेटेन्ट ज्ञान के निजीकरण का मुख्य हथियार है और उससे मुकाबला यों नहीं हो पायेगा। जिसे वे पारम्परिक ज्ञान कहते हैं उसे लोकविद्या के रूप में समझना होगा। लोकविद्या की खुली और मुक्त प्रक्रियाओं में से ज्ञान के संगठन और विकास के नये सिद्धान्त गढ़ने होंगे। एक दूसरी दुनिया की कल्पना करनी होगी जिसके लिए संघर्ष का ही एक हिस्सा होगा ज्ञान के निजीकरण से मुक्ति।

ज्ञान के निजीकरण का महत्व इतना बढ़ने का कारण है – ज्ञान के प्रबन्धन का अस्तित्व में आना। ज्ञान प्रबन्धन ज्ञान के शोषण की एक पूरी दुनिया रचता है जिसमें ज्ञान के निजीकरण के मार्फत अकूत मुनाफे और कमाई की सम्भावना बनती है। औद्योगिक दुनिया में पेटेन्ट कानून का बनना शुरू हुए 200 साल से अधिक हो चुका है। उसके साथ पूँजीवादी दुनिया का उत्पादन के साधनों के निजीकरण का सिद्धान्त और व्यवहार अस्तित्व में आया। तब वह श्रम के शोषण और अकूत सम्पत्ति के संग्रह का स्रोत बना। समाजवाद ने उसे चुनौती दी और सम्पत्ति के निजीकरण के खिलाफ दुनिया भर में संघर्ष चले, क्रांन्तियाँ हुईं और नई व्यवस्थायें

बनीं। कम्प्यूटर, संचार और इंटरनेट ने एक नई दुनिया बनाना शुरू किया है जिसमें श्रम के शोषण के साथ ज्ञान का शोषण जुड़ गया है। नये पेटेन्ट कानूनों के जरिये ज्ञान के निजीकरण को ठोस और सुरक्षित रूप दिया जा रहा है। ज्ञान–मुक्ति की अवधारणा ही वह शुरूआती बिन्दु है जहाँ से इस व्यवस्था के खिलाफ संघर्ष शुरू होता है। विश्वविद्यालयों और शोध संस्थाओं में जो वैज्ञानिक अनुसंधान होता है, उसकी व्यवस्था में भी बड़े–बड़े परिवर्तन आ रहे हैं। यूरोप और अमेरिका के विश्वविद्यालय यों सुधारे जा रहें हैं कि वहाँ से पढ़ कर निकलने वाले नौजवान ज्ञानी व्यक्ति नहीं होंगे बल्कि स्वयं एक ऐसा ज्ञान उत्पाद होंगे जो बड़ी–बड़ी कम्पनियों के इस्तेमाल के योग्य हो। अपने यहाँ भी शिक्षा में सुधार के नाम पर इसी दिशा में परिवर्तन किया जा रहा है। कम्पनियाँ खुले आम यह मांग कर रही हैं और राष्ट्रीय ज्ञान आयोग इस मांग को पूरा करने के प्रस्ताव तैयार कर रहा है। स्कूल, कालेज और विश्वविद्यालय के निजी होने का सबसे बड़ा नतीजा ज्ञान के निजीकरण में होता है और यही ज्ञान के निजीकरण का विचार शिक्षा के निजीकरण का व्यापक सैद्धांतिक आधार भी तैयार करता है। शिक्षण संस्थानों के वे शिक्षक, अनुसंधानकर्ता व छात्र–छात्रायें जो ज्ञान को मनुष्य के एक स्वाभाविक और आदर्श गुण के रूप में देखते हैं उन्हें ज्ञान मुक्ति आंदोलन की अग्रणी पंक्ति में होना चाहिए।

ज्ञान के निजीकरण के विरोध का विचार मनुष्य के स्वभाव के अनुकूल एक आदर्श और लोकप्रिय विचार है। किसानों, कारीगरों और मज़दूरों के घरों के नौजवानों को, मुक्त और खुले साफ्टवेअर के पक्षधरों को, पेटेन्ट के खिलाफ लड़ने वालों को तथा स्कूल–कालेज व विश्वविद्यालयों के निजीकरण के विरोधियों को ज्ञान–मुक्ति के विचार पर एकजुट होना चाहिए।

8

ज्ञान का नियंत्रण

ज्ञान और उससे सम्बन्धित क्रियायें आज मुक्त नहीं हैं। हमें यह आजादी नहीं है कि हम अपने ज्ञान का जैसा चाहें वैसा इस्तेमाल करें। ऐसी किसी भी आजादी पर समाज का इतना अंकुश तो होना ही चाहिए जिससे कि उसका इस्तेमाल दूसरे को छलने के लिए या किसी का शोषण करने के लिए न किया जा सके। लेकिन आज जो अंकुश है वह ऐसे किन्हीं विचारों से प्रेरित नहीं है। उल्टे छलने और शोषण करने की तो आजादी दिखाई देती है और यदि आप अपने ज्ञान का इस्तेमाल अपनी जीविका चलाने के लिए या दूसरों की मदद करने के लिए करना चाहते हैं तो तरह–तरह के प्रतिबन्धों का सामना करना पड़ सकता है। उदाहरण के लिए अगर आपने स्वास्थ्य रक्षा का ज्ञान अपने बड़े–बूढ़ों से अथवा बिरादरी में अन्य विशेषज्ञों से प्राप्त किया है तो आप इसका इस्तेमाल न लोगों की स्वास्थ्य सुरक्षा के लिए कर सकते हैं और न अपनी जीविका चलाने के लिए ही। अगर आप ऐसा करेंगे तो सरकारी नियमों और कानूनों का उल्लंघन होगा और सरकार और अदालत की नजर में आप सजा के पात्र होंगे।

ज्ञान और संसाधनों दोनों के इस्तेमाल पर विस्तृत कानून बने हैं। कुछ कानून सीधे ज्ञान के इस्तेमाल पर रोक डालते हैं और कुछ संसाधनों के इस्तेमाल पर। संसाधनों के इस्तेमाल पर डाली गई रोक ज्ञान के इस्तेमाल पर डाली गई रोक के बराबर ही है, क्योंकि उन संसाधनों की जानकारी का जो ज्ञान है वह संसाधनों पर रोक से पंगु हो जाता है। उदाहरण के लिए खनिजों के इस्तेमाल पर विस्तृत कानून है। इन कानूनों के चलते वे आदिवासी जो इनके इस्तेमाल का ज्ञान रखते हैं, अपने ज्ञान के बल पर अपनी जीविका चलाने से वंचित कर दिये गये हैं। अगरिया जनजाति के लोग भारत की हजारों साल पुरानी लौह आगलन

विधि के जानकार हैं। ये उस मिट्टी से भी लोहा निकालना जानते हैं जिसमें लोहे की मात्रा इतनी कम है कि वह बोकारो और भिलाई इस्पात कारखानों के किसी काम की नहीं । लेकिन फिर भी वे अपने ज्ञान के इस्तेमाल से, लौह अयस्क से लोहा निकालने से वंचित कर दिये गये हैं। इस तरह की बात कई किस्म के खनिजों और जंगल उत्पाद को लागू हो सकती है। कृषि के क्षेत्र में हाल के वर्षों में ऐसे कानून बनाने की शुरूआत हो गई है। बीज कानून अपने बीज पैदा करने पर व्यापक पाबंदी लाता है। कल सिंचाई की व्यवस्थाओं को लेकर भी कानून बन जायेंगे। कृषि उत्पाद से विभिन्न क्रियाओं द्वारा वस्तुयें बनाने पर रोक के बहुत सारे कानून हैं। अगर चीनी मिल के आस–पास कोल्हू लगाकर हम गुड़ नहीं बना सकते तो इसका मतलब है गुड़ बनाने के ज्ञान पर पाबंदी और चीनी बनाने के ज्ञान को प्रोत्साहन। वन, खनिज, कृषि, कारीगरी आदि से सम्बन्धित उस ज्ञान पर जो लोगों के पास है विस्त्त कानूनी पाबंदियाँ हैं । ये पाबंदियाँ सूचना युग में नये–नये क्षत्रों में अपने पैर फैला रही हैं। लेकिन ज्ञान के नियंत्रण का यह केवल एक रूप है। और अनेक ढंग से यह नियंत्रण लागू है। बड़े पैमाने पर ऐसा होता है कि रोक का कोई कानून न होने पर भी संसाधनों की आपूर्ति में बाधा या संसाधनों का कृत्रिम अभाव लोगों को अपने ज्ञान के प्रयोग से वंचित करता है। जैसे बिजली के अभाव में छोटे–छोटे उद्योगों का तबाह होना , पानी या खाद के न मिलने पर कृषि के ज्ञान का प्रयोग न हो पाना, इत्यादि। शिक्षा, बाजार और सूचना के क्षेत्र में भी इसे देखा जा सकता है।

शिक्षा का क्षेत्र यों संगठित है कि इसमें ज्ञान की प्राप्ति उसी को होती है जो उच्च शिक्षा तक पहुँचता है। गिनती, पहाड़ा, रोजमर्रे की भाषा का सही इस्तेमाल और अपनी चौहद्दी का ज्ञान जो सभी को हर हालत में मिलना चाहिए वह भी बड़ी तादाद में लोगों को नहीं मिलता है, इसलिए राष्ट्रीय बहस भी प्राथमिक शिक्षा के गुण और मात्रा में सिमट जाती है। ज्ञान के नियंत्रण की बात उच्च शिक्षा पर नजर डाल कर ही समझी जा सकती है। जिस तरह अब बड़े शहरों की बहुमंजिली इमारतों में नया फ्लैट खरीदने

वालों में अधिकतर वही लोग होते हैं जिनके पास शहर में पहले से मकान होता है, उसी तरह नामी विश्वविद्यालयों में मेडिकल और इंजीनियरिंग कालेजों में अब अधिकतर वही छात्र–छात्रायें होते हैं जिनके घरों में पहले से उच्च शिक्षित लोग हैं , अंग्रेजी बोलने वाले हैं, और ठीक–ठाक पैसा है। बँध गया नं उच्च शिक्षा से मिलने वाला ज्ञान ! अगर सन् 1950 में और सन् 1960 में गाँव से आये हुये लड़के साइंस पढ़ सकते थे, तो आज यह क्यों नहीं सम्भव है ? उन्हें आगे बढ़ने से रोकने के कोई कानून नहीं बनाये गये हैं। लेकिन पूरी व्यवस्था प्रतियोगिता आदि के माध्यम से ऐसी बना दी गई है कि किसानों, कारीगरें,मजदूरों और निम्न मध्यम वर्ग के लोगों के बच्चे कभी उच्च शिक्षा तक नहीं पहुँच सकते। छूट केवल पैसे वालों के लिए है, जो लाखों की फीस भर सकते हैं। जब इस ज्ञान से लैस होकर नौजवान निकलते हैं तो उनको मिलने वाली तनख्वाहों की कोई सीमा नहीं है। और इस ज्ञान का प्रयोग करके चाहे जो करने की छूट है, चाहे जैसा उद्योग लगायें, चाहे जैसी संस्था बनायें, चाहे जहाँ से पैसा लायें, जिसका चाहे उसका शोषण करें, जिसको चाहें लूटें । साइंस, कम्प्यूटर और उच्च शिक्षा के ज्ञान पर एक छोटे से वर्ग का कब्जा है। और लोगों तक यह ज्ञान न पहुँचे इसकी मुकम्मल व्यवस्थायें हैं।

बाजार के मार्फत ज्ञान पर नियंत्रण की वही क्रियाएँ मजबूत होती हैं जो सरकार की नीति, कानून और शिक्षा व्यवस्था से बनती हैं। अगर मॉल बाजार बनते चले जायेंगे तो कपड़े और खाद्य वस्तुओं को बनाने की जानकारी और हुनर पर मॉल के व्यापारियों का कब्ज़ा हो जायेगा। अधिकांश धंधे के बाहर हो जायेंगे और चंद कारीगरों को काम मिलेगा। यदि हर गाँव के बाजार में लोहा, तेल , कपड़ा, रस्सी, ठण्डे पेय, साबुन, बिस्कुट, सब बाहर से आयेंगे तो स्थानीय उ़द्योग उजड़ेंगे ही। उद्योगों के उजड़ने के दो नतीजे होते हैं – एक यह कि आय टूट जाती है और दूसरा यह कि उसका ज्ञान स्थिर और शिथिल हो जाता है। पहले का असर भौतिक जिन्दगी पर पड़ता है तथा दूसरे का असर आध्यात्मिक और मनोवैज्ञानिक होता है। हमारा ज्ञान यदि कठोर नियंत्रणों के चलते

किसी काम का नहीं रह जाता तो हमारी जिन्दगी की प्राणवायु सूखने लगती है, हम बेरोजगार ही नही बल्कि बेकार हो जाते हैं। यदि ऐसे नियंत्रणों से ज्ञान को मुक्त करने के रास्ते नहीं खोले गये तो गुलामी के दिन आने वाले हैं।

सूचना युग ने ज्ञान के क्षेत्र में बड़ा इज़ाफा किया है। ज्ञान के संगठन और प्रबंधन की नई–नई तकनीकें बनायी हैं, एक नई विद्या को आकार दिया है । फिलहाल यह उच्च शिक्षा का ऊपर वाला हिस्सा है । बहुत थोड़े से लोगों की पहुँच वहाँ तक है। कम्प्यूटर हर गाँव और हर बाजार तक पहुँचने का प्रचार है। लेकिन इन कम्प्यूटरों पर बैठने वाले केवल सेवक होंगे , सब कुछ अंग्रेजी में होने की वजह से अपनी कल्पनाशीलता का भी बड़ा सीमित प्रयोग ही कर सकेंगे। कम्प्यूटर का पहुँचना और कम्प्यूटर की विद्या का पहुँचना ये एकदम अलग–अलग बातें हैं। हम उसके मिस्त्री बन जायेंगे। उस पर टाइप करने लगेंगे। फोटो और ई–मेल का काम करने लगेंगे। और अनेक तरह के काम करने लग जायेंगे, लेकिन रहेंगे मज़दूर या फिर एक छोटे–मोटे धंधे के मालिक। लेकिन उसकी विद्या हमारी पहुँच के बाहर होगी तथा हम एक नया उपभोक्ता वर्ग तैयार करने वाली मशीन के पुर्जे मात्र होंगे। अभी तो विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले ही इस विद्या से दूर हैं। यह विद्या ज्ञान के नियंत्रण का एक नया पैमाना गढ़ रही है। यह नये अंतर्राष्ट्रीय पूँजीवाद की आधारभूत विद्या है। ज्ञान मुक्ति आन्दोलन को इसकी हनक तोड़ना जरूरी है।

9

ज्ञान का शोषण

सूचना युग का आधार ज्ञान के शोषण में है। कम्पनियों के मुनाफे और सरकार की नीतियों के दबाव में समाज में उपस्थित हर तरह के ज्ञान का शोषण हो रहा है। कम्प्यूटर और संचार की प्रौद्योगिकी उनके हाथ में ज्ञान के शोषण के सबसे बड़े हथियार के रूप में है। विभिन्न प्रकार के ज्ञान के शोषण पर एक नजर डालने से यह समझ में आता है कि किस तरह अब श्रम के शोषण के साथ जुड़ कर ज्ञान का शोषण एक नये किस्म की पूँजीवादी व्यवस्था की बुनियाद बना रहा है। यहाँ इस शोषण की विविधता को सामने लाने की कोशिश की गई है । यह बताने की कोशिश की गई है कि किस तरह विश्वविद्यालय का ज्ञान, साइंस, कला, लोकविद्या, और साफ्टवेयर रूपी ज्ञान, सभी शोषण की गिरफ्त में हैं।

लोकविद्या का शोषण

1. लोकविद्या को यथासंभव कम्प्यूटर पर इकट्ठा करके किसी भी प्रयोग के लिए उपलब्ध कराया जा रहा है। किसानों, कारीगरों, महिलाओं और आदिवासियों के पास अनेक जानकारियाँ हैं। प्रकृति के बारे में ये जानकारियाँ विविध जैव क्रियाओं, स्वास्थ्य रक्षा, पशुओं, पौधों, फूल–पत्तियों और जड़ी–बूटियोंकी उपयोगिता आदि से सम्बन्ध रखती हैं। वस्तुओं के उत्पादन, उनके भौतिक गुणों, उनकी रासायनिक क्रियाओं और कला की विभिन्न विधाओं की जानकारी और समझ इन लोगों के पास है। यह सब ज्ञान बात–चीत करके इकट्ठा किया जाता है और फिर कम्प्यूटर में एक संगठित तरीके से दर्ज कर लिया जाता है। यह परम्परागत ज्ञान के नाम से जाना जाता है और कम्प्यूटर–इंटरनेट में सूचनाओं के रूप में उपलब्ध होता है। इसका बड़ा हिस्सा इंटरनेट पर

मिल जाता है, कभी बिना पैसे के तो कभी कुछ फीस देकर। तर्क यह दिया जाता है कि यह सभी को उपलब्ध है, लेकिन वास्तव में उसका उपयोग करने की स्थिति में केवल बड़ी पार्टियाँ ही होती हैं। वैसे ही जैसे मुक्त बाजार में केवल बड़ी पार्टियाँ ही मुनाफा कमाने की स्थिति में होती हैं। बहुत सी वस्तुओं क्रियाओं अथवा उपयोग के तरीकों में कमोबेश सुधार करके पेटेन्ट भी करवा लिया जाता है जिससे और लोगों द्वारा उपयोग पर प्रतिबन्ध लगता है तथा पेटेन्ट कराने वाले एकाधिकार के चलते बड़ा मुनाफा कमाने की स्थिति में आ जाते हैं। परम्परागत ज्ञान को लेकर बहुत बड़ी बहस चल रही है। उसका मालिक कौन है, उसमें पेटेन्ट की सुविधा कितनी हो कितनी न हो, उसके इस्तेमाल के समय उसके मूल मूल्यों को बनाकर रखना कितना महत्वपूर्ण है ? उन मूल्यों का उस ज्ञान और उसके मालिकों के साथ क्या सम्बन्ध है इत्यादि। बहुत लोग यह मानते हैं कि सामान्य किसानों, कारीगरों और महिलाओं या किसी क्षेत्र विशेष के लोगों के पास का ज्ञान जब एक बार इस्तेमाल करने की हालत में पूँजीपतियों के पास पहुँच जायेगा तो ये ऐसी व्यवस्थायें बनायेंगे कि वह ज्ञान पीढ़ी–दो–पीढ़ी में उसके मालिकों के पास से गायब हो जाये। इस तरह की बातें तो बहुत की गईं हैं कि इन क्रियाओं से जैव विविधता को बहुत बड़ा नुकसान है, पर्यावरण और स्थितिकीय पर गम्भीर विपरीत प्रभाव पड़ता है, यहाँ तक कि मानव जीवन खतरे में पड़ सकता है। लेकिन इस बात की चर्चा इस बहस में नही मिलती है कि यह लोकविद्या का शोषण है और किस तरह ज्ञान का शोषण सूचना युग की व्यवस्थाओं में एक आाधार भूत खम्भे के रूप में आकार ले रहा है। जब इसे यों समझा जायेगा तभी यह समझ में आयेगा कि इस युग में किसानों, कारीगरों, मजदूरों, महिलाओं और आदिवासियों की वह परिवर्तन की राजनीति कैसी होनी होगी जो इन्हें इनकी वर्तमान शोषित अवस्था से मुक्ति दिला सके।

2. लोकविद्या के शोषण में कला क्षेत्र का बड़ा महत्व है। सांस्कृतिक उत्पादन के नाम से एक नया क्षेत्र ही अस्तित्व में आया है। सामान्य लोगों या किसी क्षेत्र विशेष में प्रचलित गानों ,उनकी धुनों, उनके शब्दों, उनके कपड़ों पर डिजाइनों, उनमें इस्तेमाल रंगों, यहाँ तक कि घरों के सामने रोज सुबह बनने वाली रंगोलियों इत्यादि कला के सभी स्थानीय रूपों एवं उपक्रमों पर बाजार की पैनी नज़र है। यहाँ से ठोस कार्य कल्पना, संगठन व प्रदर्शन के तरीके इत्यादि हर चीज को इस्तेमाल करने का इस बाजार की होड़ में बड़ा महत्व है। आप इसे चोरी कहें, नकल कहें, धोखा धड़ी कहें, या उद्यमिता अथवा कल्पनाशीलता, यह आपके दृष्टिकोण पर निर्भर करता है। हालाँकि यह ज़रूर है कि नई जीवन शैली और नई प्रौद्योगिकी ने लोक–कलाओं और स्थानीय कलाओं के शोषण को सांस्कृतिक उत्पादन में एक प्रतिस्पर्धात्मक विलक्षण स्थान दे दिया है।

3. सांस्कृतिक उत्पादन केवल मनोरंजन–उद्योग के लिए ही महत्व रखता है ऐसा नही है। वेबसाइट बनाने से लेकर, हर किस्म के सामान तक जैसे बर्तन , कपड़ा, लकड़ी और चमड़े के समान, उपयोग की वस्तुयें, सजावट की वस्तुयें, इत्यादि में लोककला की एक नई भूमिका बनी है। बाजार की होड़ में टिकने और आगे बढ़ने के लिये लोककला की क्रियाओं और वस्तुओं को बहुत बड़े संसाधन के रूप में देखा जा रहा है। इनके विशेषज्ञों को उस हिसाब से अपने पड़ोसियों की तुलना में कुछ ज्यादा पैसे की नौकरी भी मिलती है। जैसे साड़ी डिजाइन के कलाकारों को, चमड़े की पहचान रखने वालों को या हस्तशिल्प के विशेष कलाकारों को। इन्हें अपनी बिरादरी के और लोगों से थोड़ा ज्यादा तो मिलता है लेकिन कम्पनी के आर्थिक हिसाब–किताब में बहुत ही कम। जितनी विविधता लोकविद्या में है और जितनी विविधता अंतर्राष्ट्रीय बाजार के लेन–देन में है उतनी ही विविधता लोकविद्या के शोषण में भी है।

4. किसानों और कारीगरों के उत्पादन के ज्ञान का बड़ा शोषण बाजार में होता है। इनके ज्ञान को जिसे हम लोकविद्या कहते हैं, परम्परागत ज्ञान कहना ठीक नही है। आधुनिक ज्ञान तकनीक और जानकारियों के पैकेट के रूप में इनके पास भरपूर मात्रा में पहुँचता है। संसाधन इनके पास पारम्परिक और आधुनिक दोनो ही होते हैं। क्रियाओं और अनुपातों की जो इनकी समझ होती है वही इनकी विशेषता है। यह समझ उनकी अपनी है। पारम्परिक और आधुनिक ज्ञान व संसाधनों की मिली–जुली स्थिति, आर्थिक मजबूरियों और सामाजिक सम्बन्धों व मान्यताओं की बाध्यताओं में एक निश्चित कार्यक्षमता से उत्पादन किया जा सके यह इस समझ की कसौटी है। यही समझ लोकविद्या की धुरी है। इसी के चलते छोटे से छोटे प्लाट पर सब्जी की खेती करके किसान जीवन निर्वाहकर पाता है और इसी के चलते कुम्हार, बढ़ई, प्लास्टिक या लकड़ी के खिलौने बनाने वाले, जूते बनाने वाले, बुनकर या मूर्ति, अंगूठी और बर्तन बनाने वाले अपना जीवन निर्वाह करते हैं। बाजार में इन्हें इनके उत्पाद का उचित दाम कभी नही मिलता। इस तरह बाजार में विनिमय की प्रतिकूल शर्तें इनकी विद्या के शोषण की व्यवस्था तैयार करती हैं।

5. नई प्रौद्योगिकी के साथ बाजार की जानकारियों और बाजार में दखल के तरीकों में अंतर आ रहा है। कहा जा रहा है कि इससे छोटे–छोटे किसानों को लाभ होगा। कम्प्यूटर–इंटरनेट की सेवाओं से विभिन्न मण्डियों में चल रहे दामों की जानकारी मिल सकेगी या फिर मोबाइल के जाल से यह ख़बर मिल सकेगी और इस जानकारी के आधार पर कहाँ क्या बेचना और कहाँ से क्या खरीदना इसके फैसले किये जा सकेंगे। बहुत लोगों को यह डर है कि छोटे प्लाट वालों को बाजार की नई व्यवस्थाओं में अधिक विपरीत स्थिति मिलेगी।

सामाजिक–राजनीतिक कार्यकर्ताओं को यह समझना चाहिये कि बात केवल बाजार या प्रौद्योगिकी से सम्बन्धित नही है बल्कि मूल बात यह है कि यह पूरी व्यवस्था लोकविद्या के शोषण की व्यवस्था है। इस नई पूँजीवादी व्यवस्था में बाजार और प्रौद्योगिकी का संचालन ही इस तरह किया जा रहा है कि किसानों और कारीगरों के ज्ञान और श्रम का शोषण किया जा सके। इस शोषण से लड़ने का रास्ता लोकविद्या प्रतिष्ठा का रास्ता है। 1998 में वाराणसी में हुए लोकविद्या महाधिवेशन ने इस संघर्ष की नींव डाली है और तभी से एक छोटा किन्तु देश भर में फैला समूह इस रास्ते को निखारने में लगा हुआ है।

विश्वविद्यालय की विद्या का शोषण

1. विश्वविद्यालय में होने वाले ज्ञान का उत्पादन और वितरण (शोध व शिक्षण) अब बड़े पैमाने पर कम्पनियों के कब्जे में जा रहा है । उच्च शिक्षा पर चल रही बहस इस बात का प्रमाण है। लगभग पूरी की पूरी बहस उच्च शिक्षा की गुणवत्ता पर चल रही है। कम्पनियों का कहना है कि विश्वविद्यालयों और व्यावसायिक महाविद्यालयों से पढ़कर निकलने वालों का ज्ञान और हुनर अथवा क्षमता बहुत सीमित होती है और वे कम्पनियों के किसी काम के नहीं होते । शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार के बगैर कम्पनियाँ तेजी से आगे नहीं बढ़ सकतीं और अर्थव्यवस्था की प्रगति की ऊँची दर नही कायम की जा सकती। उच्च शिक्षा में आरक्षण की बहस ज्यादा लोगों को उच्च शिक्षा कैसे मिले इस ओर नही मुड़ती बल्कि शिक्षा की गुणवत्ता पर ही जाकर टिक जाती है । विश्वविद्यालय के ज्ञान का शोषण कम्पनियाँ कर सकें इसी उद्देश्य से गुणवत्ता की सारी बहस चलती है, चाहे वह प्रत्यक्ष रूप में रोजगार, नौकरियों अथवा देश की आर्थिक प्रगति के नाम पर ही क्यों न की जा रही हो। इस गुणवत्ता के न होने का प्रमुख कारण अच्छे शिक्षक न होने में बताया जाता है। और अच्छे शिक्षक न मिलने का कारण कम्पनियों

की तुलना में विश्वविद्यालयों में तनख्वाहें कम हेाना बताया जाता है।

2. आजकल विश्वविद्यालयों के प्रोफेसर को 50,000 रूपया महीना और तमाम सुविधायें मिलती हैं । कहा जाता है कि 1 लाख से 1.5 लाख महीना मिले और अन्य सुविधायें भी मिलें तो जो होशियार लोग कम्पनियों में चले जाते हैं , कालेजों और विश्वविद्यालयों में पढ़ाने आने लगेंगे । ये पढ़ायेंगे तो पढ़ाई अच्छी होगी । पढ़कर निकलने वाले होशियार और जानकार होंगे। तब उन्हें कम्पनियों में नौकरी मिलेगी, कम्पनियाँ धड़ल्ले से चलेंगी और देश की आर्थिक प्रगति तेजी से होगी । यह सब होने के लिए विश्वविद्यालयों के पास ज्यादा पैसा होना चाहिये जिससे वे मोटी–मोटी तनख्वाहें दे सकें । यह पैसा लाने का एक ही तरीका है फीस बढ़ाओ । अभी जो फीस प्राइवेट इंजीनियरिंग कालेज में चल रही है उसको भी तीन गुना कर दो । कुल मिलाकर नतीजा यह निकलेगा कि कम्पनियों का मुनाफा बढ़ेगा और उच्च शिक्षा मध्यम वर्ग के लोगों की पहुँच के भी बाहर हो जायेगी ।

3. विश्वविद्यालयीय ज्ञान के शोषण पर आधारित व्यवस्थाएँ हमेशा ही ऐसी होंगी जिनमें कम लोगों को विश्वविद्यालय में दाखिला मिलता है और वहाँ की पढ़ाई से जो शिक्षित मनुष्य तैयार होता है वह कम्पनियों के इस्तेमाल की एक वस्तु होता है। इससे जमीन आसमान का फर्क पड़ता है कि ज्ञान को शोषण की वस्तु समझा जाता है या मनुष्य और समाज के न्याय संगत पुनर्निर्माण का एक साधन और संसाधन। जब ज्ञान को एक शोषण की वस्तु समझा जायेगा तो विश्वविद्यालयों में अथवा उच्च शिक्षा में साइंस, कला और समाज का स्थान घटता चला जायेगा, मुनाफे की दृष्टि से विषय तैयार होंगे और प्रबन्धन, इंजीनियरिंग, मेडिकल, कम्प्यूटर और विधि (कानून) जैसे विषयों का बोलबाला होगा।

4. विश्वविद्यालय का ज्ञान पहले भी मानवीय मूल्यों से कतराता था। साइंस ने ज्ञान की वह समझ प्रस्तुत की थी जिसमें ज्ञान का मूल्यों से कोई रिश्ता ही नही बनता था। इसलिए ज्ञान को शोषण की एक वस्तु बना देना आसान हो गया। साइंस के थोड़े बहुत जो अपने मूल्य थे, जैसे प्रयोग की कसौटी, सत्य की खोज इत्यादि, वे भी झटक दिये गये । अब ज्ञान पर उपयोगिता का सिद्धान्त लागू होता है और उपयोगिता का सिद्धांत पूँजीवादी अर्थव्यवस्था में शोषण के सिद्धान्त का रूप लेता है।

5. साइंस में शोध के विश्व के अग्रणी स्थान अब टेक्नोलॉजी की बात करते हैं । सूचना प्रौद्योगिकी ,बायो–टेक्नोलॉजी और नैनो–टेक्नोलॉजी नये अग्रणी क्षेत्र हैं । ज्ञान के शोषण के दृष्टिकोण ने साइंस और कला को टेक्नोलॉजी, तकनीक और हुनर में बदल दिया है, अध्यात्म को मनोवैज्ञानिक बीमारियाँ ठीक करने का औजार बना दिया है और दर्शन को ज्ञान की नई अवस्था के पक्ष में तर्क गढ़ने और माफीनामे लिखने की एक विधा बना दिया है।

विश्वविद्यालयीय विद्या शोषण से मुक्त हो इसके लिये जरूरी है कि इसका पूँजी के साथ रिश्ता टूटे। इसके लिये उच्च शिक्षा सस्ती होनी होगी और ज्ञान के उत्पादन और वितरण (प्रसार) को कम्पनियों के लिये माल तैयार करने के रूप में ढालना बन्द करना होगा। यह युगांतरकारी जिम्मेदारी छात्रों और नौजवानों के कंधों पर है। छात्र–युवा आन्दोलन विश्वविद्यालयीय ज्ञान को शोषण से मुक्त कराने में अहम् भूमिका निभा सकता है।

एक प्रमुख तरीका यह अपनाया जा सकता है कि विश्वविद्यालय को लोकविद्या से जोडा जाय। चूँकि लोकविद्या की गति बाजार से बाहर मनुष्य की ज़रूरतों के संदर्भ में होती है इससे विश्वविद्यालय की गतिविधियों में मानवहित का संदर्भ बनेगा और ज्ञान के नये मूल्यों की रचना होगी। इससे औद्योगिक समाज द्वारा किया गया साइंस और कला का विभाजन टूटेगा और ज्ञान की गतिविधि एक सांस्कृतिक गतिविधि के रूप में प्रतिष्ठित होगी।

साफ्टवेअर ज्ञान का शोषण

ज्ञान के शोषण की कहानी साफ्टवेअर की दुनिया को भी लागू होती है। कम्प्यूटर में जितने भी साफ्टवेअर लगे होते हैं या लगाये जा सकते हैं उन सब पर किसी न किसी कम्पनी का पेटेन्ट होता है। उनका मुक्त प्रयोग नही किया जा सकता । अगर कोई अपनी जरूरत के हिसाब से ऐसे साफ्टवेअर में थोड़ा भी परिवर्तन करना चाहे, तो जिन जानकारियों की जरूरत होगी वे उसे नही मिल सकेंगी, क्योंकि पेटेन्ट कराने वाली कम्पनी को उन्हें अपने पास गुप्त और सुरक्षित रखने का अधिकार होता है। जिस भी अर्थ में साफ्टवेअर ज्ञान है, पेटेन्ट कानून उसके शोषण की व्यवस्था देता है ।

आधारभूत साफ्टवेअर के पेटेन्ट का साफ्टवेअर समुदाय के अन्दर से ही विरोध है । मुक्त ज्ञान का पक्षधर यह अभियान मुक्त एवं खुले स्रोत साफ्टवेअर (फ्री एण्ड ओपन सोर्स साफ्टवेअर) के नाम से चल रहा है। इन लोगों ने कम्प्यूटर चलाने के आधारभूत साफ्टवेअर बनाये हैं और उन्हें इन्टरनेट पर डाल रखा है जिसका इस्तेमाल कोई भी कर सकता है। कोई भी अपने ढंग से व अपनी जरूरत के हिसाब से उनमें परिवर्तन व विकास कर सकता है। शर्त यह है कि सभी विकास इन्टरनेट में मुक्त क्षेत्र में किसी के भी इस्तेमाल के लिये उपलब्ध हों। यह कम्प्यूटर के क्षेत्र का ज्ञान–मुक्ति अभियान है।

10

ज्ञान मुक्ति आन्दोलन

अगर एक ऐसा समाज बनाना है जो आर्थिक शोषण, सामाजिक गैर–बराबरी, राजनैतिक गुलामी अथवा पिछलग्गूपन, सांस्कृतिक तानाशाही और दार्शनिक ऊँच–नीच से मुक्त हो तो एक शर्त यह है कि ज्ञान किसी के भी कब्जे, नियंत्रण अथवा शोषण से मुक्त होना होगा।

शिक्षा के क्षेत्र में, बाजार और पेटेन्ट के क्षेत्र में, साफ्टवेअर के क्षेत्र में और प्राकृतिक संसाधनों के इस्तेमाल में जहाँ एक तरफ ज्ञान को बाँधने उस पर नियंत्रण करने और उसे एक छोटे से तबके तक सीमित करने की क्रियायें साफतौर पर देखी जा सकती हैं, वहीं इन सभी क्षेत्रों में इन क्रियाओं का विरोध भी साफ दिखाई देता है। ऐसे विरोध के लिये छात्रों, बुद्धिजीवियों, साफ्टवेअर कर्मियों, छोटा धंधा करने वालों, कारीगरों, आदिवासियों और किसानों द्वारा किये जा रहे आन्दोलनों और रचनात्मक कार्यों की कोई कमी नही है। किंतु वे सब अलग–थलग है। ज्ञान मुक्ति का विचार और ज्ञान मुक्ति की कल्पना इन सबको आपस में जोड़ने का काम कर सकती है। इसी एका से सूचना युग के सत्ताधारियों को चुनौती दी जा सकती है। नीचे इस बात पर कुछ विस्तार से विचार किया गया है।

1. लोकविद्या प्रतिष्ठा और स्थानीय बाजार

कम्प्यूटर–इंटरनेट की ज्ञान व्यवस्थाओं और अर्थव्यवस्था ने लोकविद्या प्रतिष्ठा के नये सार्वजनिक स्थानों को बनाया है। विभिन्न विद्या परम्पराओं के लिये एक पुनर्जागरण का रास्ता खोला है जिसे यदि लोकस्थ नही किया गया यानि अगर लोगों के बीच उसके पाये नही बैठाये गये तो वह जनता की विद्या को जनता के

ही खिलाफ मोड़ देने का सबसे ताकतवर हथियार बन जायेगा। कुछ महकमों में ये बात थोड़ी सफाई से दिखाई देती है। जैसे,

- स्वास्थ्य रक्षा के पारम्परिक उपायों और जंगलों की पारम्परिक जानकारी व समझ को एक नया सम्मान मिला है।
- जबकि पारम्परिक उद्योग बड़े पैमाने पर टूटे हैं, कारीगर परिवारों के डिज़ाइन सम्बन्धी विचारों और महीन हुनर की उनकी क्षमताओं की ओर नये–नये प्रतिष्ठान आकर्षित हो रहे हैं।
- कृषि क्षेत्र में कम्पनियों के प्रवेश ने फिर से इस बात को रेखांकित किया है कि अनेक वर्षों से विश्वविद्यालयों की उपस्थिति के बावजूद किसान परिवार ही कृषि क्रियाओं के सबसे अच्छे जानकार हैं।
- मीडिया के सतत विस्तार ने लोककलाओं और विभिन्न भाषाओं को प्रतिष्ठा का एक मार्ग दिया है।

यह सब लोकविद्या की प्रतिष्ठा की एक नई प्रक्रिया के रूप में देखा जा सकता है। सूचना उद्योग ने लोकविद्या प्रतिष्ठा के विषय में जान तो फूँक दी है लेकिन कम्पनियों के स्वार्थ व अमीर वर्गों का स्वेच्छाचारी स्वभाव और उनकी फैशन की जिन्दगी लोकविद्या प्रतिष्ठा की प्रक्रिया को बाँधने का काम करते हैं तथा इस नई गति को आम किसान व कारीगर तक पहुँचने से रोकते हैं। कम्प्यूटर से लोगों को जोड़ने के काम कई तरह से किये जा रहे हैं। सरकार, बड़ी–बड़ी कम्पनियाँ, स्वयंसेवी संस्थायें एवं छोटे–छोटे उद्यमी अपने–अपने ढंग से और अपने–अपने उद्देश्यों के अंतर्गत कम्प्यूटर की दुकानें लगा रहे हैं। छोटे उद्यमियों ने सरकार से सहायता की माँग करनी चाहिये। उन्हें अपने संगठन बनाने शुरू कर देने चाहिये।

अमीर वर्गों का यह खेल खुले रूप में बाजार में देखने को मिलता है। यहीं पर वह संघर्ष भी है जो लोकविद्या की प्रतिष्ठा को गरीब वर्गों के संघर्ष के साथ जोड़ता है। चंद हुनरमंद लोगों के

शिल्प और श्रम की प्रतिष्ठा से लोकविद्या प्रतिष्ठा का केवल आभास पैदा होता है। कारीगर, किसान, लोक–कलाकार, खाद्य वस्तुओं के निर्माता, स्वास्थ्य कार्यकर्ता, भाषाओं के जानकार और छोटे दुकानदार अपनी विद्या के लिये और अपनी विद्या से पैदा की गई वस्तुओं के लिये क्षेत्रीय, स्थानीय, कस्बाई और ग्रामीण बाजारों में स्थान के लिये संघर्ष करते दिखाई देते हैं। शहरों में मॉल बाजार का विरोध, पटरी व्यवसाइयों के उजाड़ का विरोध, अनाज के बाजार में बड़ी कम्पनियों की घुसपैठ का विरोध आदि इसी संघर्ष के उदाहरण हैं। इन वर्गों के युवाओं द्वारा उच्च शिक्षा हासिल करने की व्यवस्थाओं के लिये संघर्ष भी इसी कड़ी में आते हैं। सामान्यतः ये संघर्ष आरक्षण की माँग करते हैं।

बड़े उद्योगों का विकास तीसरी दुनिया में सबको मज़दूर तो नही बना पाया लेकिन यदि बड़े बाजारों का विकास ऐसे ही चलता रहा तो किसान और कारीगर सब मज़दूर बन ही जायेंगे। इस अर्थ में नहीं कि वे मज़दूरी के लिये किसी और के यहाँ काम कर रहे होंगे बल्कि इस अर्थ में कि वे अपने ही घरों में मज़दूरी के लिये यंत्रवत काम कर रहे होंगे। उनकी विद्या इतिहास का विषय बन जायेगी। लोकविद्या प्रतिष्ठा का वर्तमान दौर या तो ज्ञान मुक्ति संघर्षों द्वारा फैलता चला जायेगा या फिर एक बहुत बड़ा भुलावा साबित होगा जो शुरू में चमक दिखाकर अंत में लोकविद्या–धारकों की विद्या को सुखा देगा।

बाजार में स्थान और हिस्से के आन्दोलन को दूरगामी एवं व्यापक सामाजिक दृष्टि से देखना जरूरी है क्योंकि एक तो इसमें समाज के विभिन्न तबके शामिल हैं और दूसरा, चूँकि बाजार सूचना युग के केन्द्र में है इसमें आमूल बदलाव लम्बे संघर्ष की माँग करता है। ज्ञान मुक्ति आन्दोलन के कार्यकर्ताओं को बाजार के संघर्षों में सामाजिक दृष्टि का समावेश करना चाहिये। कारीगरों, छोटे दुकानदारों, आढ़तियों, किसानों, लोक–कलाकारों, स्थानीय भाषाओं के जानकारों की समझ में यह आना चाहिये कि वे किसी पहले की व्यवस्था की बहाली की माँग नही कर रहे हैं बल्कि एक ऐसे समाज को बनाने के प्रयास में हैं जिसमें उन सभी के लिये

बराबरी के सामाजिक स्थान और आर्थिक मौके होंगे। इस विचार को मज़बूत करने में महिलाओं की विशेष भूमिका होगी। स्थानीय बाजार के रूप में बाजार में समय और स्थान के अनुरूप विविध रचनात्मक कार्य हाथ में लिये जाने चाहिये। ये बाजार के सम्बन्ध में अलग मूल्यों और नियमों की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित करेंगे। इन विचारों का आन्दोलनकारियों में प्रचार करना और पहल लेकर काम शुरू करना ज्ञान मुक्ति आन्दोलन के कार्यकर्ताओं का कर्तव्य है।

2. शिक्षा

ज्ञान मुक्ति संघर्ष का दूसरा बड़ा स्थान शिक्षा के क्षेत्र में है। शिक्षा और ज्ञान को एक–दूसरे से अलग नही किया जा सकता। आधुनिक समाज में शिक्षा का जो स्थान है उसके चलते ज्ञान के बहुमुखी गुणों को मान्यता मिलती है। शिक्षा सबके लिये है, शिक्षा से आय पक्की होती है, शिक्षा से समाज में सम्मान मिलता है, शिक्षा से मानवीय गुणों एवं सभ्यता का विकास होता है। इसलिये शिक्षा की आकांक्षा को समाज में पूर्ण मान्यता प्राप्त है। लेकिन विश्व भर में 20वीं सदी में शिक्षा की स्थिति बेहद निराशाजनक रही है।

भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन में 20वीं सदी के शुरू से शिक्षा के प्रसार की माँग ने जोर पकड़ा। आजादी के बाद तेजी से नये स्कूल–कालेज खुले। फिर भी जनसंख्या के हिसाब से ये प्रयास बेहद छोटे ही रहे। अब इस सूचना युग में शिक्षा के निजीकरण का दौर चला है। कुछ उच्च शिक्षा के सरकारी संस्थानों को छोड़ दें तो जिन कालेजों में पढ़ाई से रोजगार मिलता है वे निजी हैं और वहाँ फीस बहुत अधिक होती है। सरकारी महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में भी फीस लगातार बढ़ाई जा रही है। इस तरह शिक्षा के क्षेत्र पर कब्ज़ा करके ज्ञान पर एक छोटे से वर्ग का कब्ज़ा स्थापित किया जा रहा है। ऐसा न हो पाये इसके लिये जरूरी है कि शिक्षा, अच्छी शिक्षा और उच्च शिक्षा के दरवाजे सबके लिये खुले हों। अभी इसमें सामाजिक और आर्थिक दोनों

बाधाएँ हैं। आर्थिक बाधा स्पष्ट है, पढ़ाई में बहुत अधिक पैसा लगता है। सामाजिक बाधा सामाजिक वर्गीकरण के चलते है। बहुसंख्यक बच्चे और नौजवान सामाजिक दृष्टि से ऐसे असंगठित माहौल में बड़े होते हैं जिसमें गणित और साइंस की शिक्षा में दक्षता हासिल करना बेहद कठिन होता है। इन दोनो ही बाधाओं के खिलाफ संघर्ष देखने को मिलता है।

फीस बढ़ोत्तरी के खिलाफ छात्रों के संघर्ष और आरक्षण के पक्ष के संघर्ष इन्हीं बाधाओं को दूर करने के लिये हैं। अच्छी और कारगर शिक्षा सस्ती हो और उस शिक्षा तक सामाजिक गैर–बराबरी के शिकार वर्गों के बच्चे भी पहुँचें तो ज्ञान पर किसी छोटे से वर्ग का कब्ज़ा नही हो सकता। इसलिये ज्ञान मुक्ति आन्दोलन को ऐसे संघर्षों का साथ देना चाहिये।

अभी शिक्षा का आधार साइंस और कम्प्यूटर के ज्ञान में है और यूरोप और अमेरिका के प्रतिस्पर्धा के सामाजिक मूल्य में है। जब तक यह बना रहेगा तब तक औपचारिक शिक्षा और उससे मिलने वाला ज्ञान एक छोटे तबके तक ही सीमित रहेगा और ज्ञान के शोषण तथा उस पर पूँजी के नियंत्रण की स्थिति बनी रहेगी। ज्ञान मुक्ति आन्दोलन शिक्षा के विषय, स्वरूप और व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन का आन्दोलन है। लोकविद्या को ज्ञान का अभिन्न अंग मानने से इस क्रांति के दरवाजे खुलते हैं। लोकविद्या का शिक्षा में समावेश शिक्षा की नीतियों, व्यवस्थाओं और पाठ्यक्रमों में बुनियादी बदलाव की माँग करता है।

3. पेटेंट

हल्दी, नीम और बासमती पर पेटेंट की चर्चा से बहुत से लोग पेटेंट के सवाल से परिचित हो गये हैं। जैसे प्रकाशन के क्षेत्र में कापीराइट होता है वैसे ही उद्योग और व्यापार के क्षेत्र में पेटेंट होता है। वस्तुओं का, उनको बनाने की प्रक्रियाओं का, तकनीक का, ज्ञान का और साफ्टवेअर आदि का पेटेंट होता है। इनमें से किसी का भी कोई पेटेंट करा ले तो और कोई उसका इस्तेमाल उसकी अनुमति के बगैर नही कर सकता। यह पेटेंट का विचार 18

वीं सदी के अंतिम दशकों में यूरोप में अस्तित्व में आया। यही औद्योगिक क्रांति का समय है और इसी समय से उद्योगों के मालिक अपूर्व सम्पत्ति के मालिक बनना शुरू हुए।

पेटेंट ने ज्ञान के क्षेत्र में स्वामित्व का प्रवेश कराया और ज्ञान को मुनाफे के साथ जोड़ दिया। किसी भी न्यायसंगत समाज को पेटेंट का विचार मंजूर नही हो सकता। प्रकृति, प्राकृतिक क्रियाओं, रासायनिक प्रक्रियाओं, औद्योगिक प्रक्रियाओं, शिल्प, डिजाइन, प्रबन्ध के तरीकों, स्वास्थ्य–रक्षा के उपायों, कलाकृतियों, इत्यादि की समझ या जानकारी को किसी के स्वामित्व का विषय मानना किसी सभ्य समाज को मान्य नही हो सकता। जो बातें अथवा समझें सैंकड़ों–हजारों साल के ज्ञान के इतिहास के आधार पर बनती हैं वे किसी की निजी सम्पत्ति हो जायें तो क्या यह एक बड़े अचरज की बात नही होनी चाहिये? उन्हें तो समाज और मनुष्य मात्र के गुण के रूप में देखा जाना चाहिये।

तरह–तरह के पेटेंटों के खिलाफ संघर्ष चलते रहते हैं। कुछ उद्योग जगत के अंदर के ही संघर्ष होते हैं और कुछ व्यापक जनहित के होते हैं। जब पेटेंट कानून बन रहे थे तब भी उनका विरोध हुआ था। किंतु अगर कृषि के बीज, हल्दी, नीम और बासमती से सम्बन्धित पेटेंट की कानूनी लड़ाइयाँ यूरोप ओर अमेरिका की अदालतों में लड़नी पड़ें तो उसके नतीजे आम हित में कैसे होंगे यह सोच पाना भी कठिन है। ये लड़ाइयाँ तो लोगों द्वारा सिविल नाफरमानी से लड़ी जानी चाहिये। जब तक इन संघर्षों को ज्ञान मुक्ति के व्यापक फलक पर नही बैठाया जाता, इनसे समाज का कोई हित सधेगा यह संदेहजनक है। मुनाफे के विचार पर ही हमला बोलना अनिवार्य है।

अधिकांश धर्मों में सूद न लेने की व्यवस्था थी। अभी भी शायद कुछ इस्लामी बैंक इसका पालन करते हैं, शायद कुछ ईसाइयों के बैंक भी ऐसे हों। वैसे पूँजीवाद के विकास के साथ सूद लेना धीरे–धीरे करके आम हो गया। मुनाफे की दुनिया हो और सूद न लिया जाय, पेटेंट न कराया जाय, व्यापार में फरेब न

किया जाय, यह कैसे संभव है ? मुनाफे के सवाल को बुनियादी बहस में लाना जरूरी है।

पेटेंट से सम्बन्धित कई संघर्ष पारम्परिक ज्ञान को लेकर हैं। जिस ज्ञान का इस्तेमाल मुनाफे के लिये कभी नही हुआ उसे पेटेंट के मार्फत बड़े मुनाफे का स्रोत बनाने की कोशिशें हो रही हैं। यह सामान्यतः समुदाय आधारित ज्ञान है जिसका पेटेंट हो जाने के बाद वह समुदाय अपनी रोजी–रोटी के लिये भी उस ज्ञान का इस्तेमाल करने से वंचित हो जा सकता है। ऐसे पेटेंट के विरोध के जो संघर्ष हैं उनमें ये विचार जोड़े जाने चाहिये कि ज्ञान और मुनाफे को जोड़ना सर्वथा गलत है। इससे एक तरफ ज्ञान का विचार तराशने में मदद मिलेगी और दूसरी ओर व्यापार और उद्योग के वे रूप उजागर होंगे जो मुनाफे के बगैर चलते हैं।

4. मुक्त व खुला साफ्टवेअर

साफ्टवेअर के क्षेत्र में शुरू से ही एक धारा का विकास हुआ जिसने निजी मालिकाने का सिद्धांत मानने से इनकार कर दिया। ऐसा होता है कि जो बड़े–बड़े साफ्टवेअर होते हैं उनकी एक मूल नियमावली (सोर्स कोड) होती है जिस पर वे आधारित होते हैं और उन साफ्टवेअरों में कोई सुधार या परिवर्तन करना हो तो इस मूल नियमावली की जानकारी जरूरी होती है। शुरू से ही मूल नियमावली पर कापीराइट का सिद्धांत लागू होता रहा है। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि आपके पास अंग्रेजी भाषा सिखाने का कोई साफ्टवेअर है और वह मुख्यतः हिन्दी जानने वालों के लिए बना है। इसका इस्तेमाल मराठी या बंगाली जैसी हिन्दी से मिलती–जुलती भाषाओं वाले भी कर पायेंगे यदि इस साफ्टवेअर में जरूरत का सुधार कर लिया जाय । इस सुधार के लिए मूल नियमावली की जरूरत होगी और यह मूल नियमावली साफ्टवेअर बनाने वाली कम्पनी के पास होगी जो कापीराइट के कानून के अन्तर्गत इसे आपको देने से मना कर सकती है। मुक्त और खुले साफ्टवेअर वाले इसी व्यवस्था के खिलाफ हैं। वे इसे साफ्टवेअर रूपी ज्ञान के विकास में बहुत बड़ी बाधा मानते हैं।

शुरू से ही साफ्टवेअर की दुनिया में ऐसे लोग रहे हैं जिनका सार्वजनिक गतिविधियों में कोड और गुप्तता से एक किस्म का वैर रहा। मूल नियमावली को गुप्त रखने के विरोध को थोड़ा व्यापक समर्थन मिला है। इस मुक्त साफ्टवेअर आन्दोलन का आग्रह यह है कि साफ्टवेअर के विकास प्रवाह और प्रसार में कोई भी बाधा नहीं आनी चाहिए। इसके अनुकूल यह संगठित भी है और इनके अपने लाइसेंस वगैरह के नियम हैं। इसमें शामिल लोगों को निश्चित अर्थों में व्यवहार के नियमों का पालन करना होता है। विभिन्न देशों में ऐसे लोगों ने अपने मंच, संगठन आदि बनाये हैं। ये संगठन मुक्त और खुले साफ्टवेअर की वकालत करते हैं और सरकार से इसके अनुकूल नीतियाँ बनाने का आग्रह करते हैं।

माइक्रोसाफ्ट कम्पनी मूल नियमावली पर निजी मिल्कियत चाहने वालों की नेता है। ओरेकल, आई बी एम, अडोब, सनमाइक्रो सिस्टम्स, सिस्को सिस्टम्स और अनेक छोटी–बड़ी कम्पनियाँ सब मूल नियमावली को गुप्त रखने के पक्ष में हैं। इससे जो शुरू में विकसित हो गये उन्हें अपना कब्जा बनाये रखने में मदद मिलती है। तीसरी दुनिया के देशों में अगर साफ्टवेअर का व्यापक विकास होना है और चन्द कम्पनियों के घेरे में उसे कैद नहीं होने देना है तो मुक्त और खुले साफ्टवेअर की हिमायत करनी होगी। यह व्यवस्था आमतौर पर लिनक्स के नाम से प्रचलित है। इसमें माइक्रोसाफ्ट से ज्यादा क्षमता के साफ्टवेअर होते हैं और इस्तेमाल करने वाले उसे समृद्ध करते जायें यह भी सम्भव होता है।

ब्राजील की सरकार ने सारे सरकारी कामों को लिनक्स पर कर दिया है। सुनने में आता है कि इससे वहाँ एक सांस्कृतिक आंदोलन के विकास में काफी सहयोग भी मिला है। हिन्दुस्तान हो या अमेरिका, चीन हो या फ्रांस या छोटे–छोटे देश सभी के लिए यही हितकर है कि उनके अधिकाधिक कार्य मुक्त और खुले साफ्टवेअर की व्यवस्थाओं में हों। सरकारों को इन्हें बढ़ावा देना चाहिये।

माइक्रोसाफ्ट के विन्डोज़ और लिनक्स के बीच कुछ वैसा ही रिश्ता माना जा सकता है जैसा कोका–कोला और फलों के

रसों के बीच है। जैसे कोका–कोला अनेक छोटी–बड़ी दुकानों पर आसानी से मिलता है वैसे ही माइक्रोसाफ्ट की विन्डोज लगाकर देने वाले सब जगह मिलते हैं। इस्तेमाल करने में भी लिनक्स की तुलना में थोड़ा सुविधाजनक होता है । फलों का रस स्वादिष्ट होता है, पौष्टिक होता है, उसमें विविधता होती है, उसे खट्टा, मीठा, खारा जैसा चाहे वैसा बना कर पीया जा सकता है वैसे ही लिनक्स में भी विविधता है। लेकिन जैसे रस की दुकान खोजनी पड़ती है और रस निकले तब तक इंतजार करना पड़ता है वैसे ही लिनक्स के जानकार और बैठाने वाले खोजने पड़ते हैं और छोटे–छोटे कामों में इसके रास्ते हमेशा सुगम हों ऐसा नहीं होता।

मुक्त और खुले साफ्टवेअर के समर्थक सूचना युग की दुनिया के महान समर्थक हैं। इनका आग्रह ज्ञान की खुली व्यवस्थाओं का है। ज्ञान पर एकाधिकार, उसको निजी बनाने या उसको गुप्त रखने के ये विरोधी हैं। विचार का विषय यह है कि क्या इनकी सोच में विचार का वह धागा भी है जो ज्ञान के प्रबन्धन को लोकहित और जनता की व्यवस्थाओं की ओर मोड़ने में सहायक हो! जनहित के विचार इन लोगों में पनपें यह ज्ञान मुक्ति आन्दोलन का कार्य है।

5. प्राकृतिक संसाधन

प्राकृतिक संसाधनों पर यदि किसी प्रबन्धकर्ता, पूँजी के मालिक अथवा दूरस्थ संस्था का मालिकाना हो तो उन संसाधनों से काम करने वालों के ज्ञान का मुक्त इस्तेमाल कभी नहीं हो सकता। और इसी में जड़ है समाज में कल्पनाशीलता के अभाव की, बड़े पैमाने पर पश्चिम की नकल की और अपने लिए अनुकूल व्यवस्थाओं को न सोच पाने की। लोकविद्याओं को बाँधने का इससे प्रभावी तरीका क्या हो सकता है कि जंगल व पहाड़ ठेकेदारों के नाम हों, पानी पर जमींदारों और कम्पनियों का कब्जा हो और बहुत सी खेती बटाईदारी में या किराये पर हो रही हो। लोकविद्या को बाँधने के लिये और लोकशक्ति के स्रोत सूख जायें इसके लिये प्राकृतिक संसाधनों पर औरों का मालिकाना कानूनी हो यह ज़रूरी

नही है। ज़रूरी केवल इतना है कि उनका इस्तेमाल किसी परकीय शक्ति द्वारा तय हो रहा हो और मुनाफे के लिए हो रहा हो।

आदिवासी क्षेत्रों में जल, जंगल और जमीन के लिए संघर्ष हैं, तीनों ही उनके जीवन के स्रोत हैं और तीनों के ही इस्तेमाल से वे औद्योगिक विकास क्रम में लगातार वंचित किये गये हैं। तमाम जगहों पर इन मुद्दों को लेकर संघर्ष होते रहते हैं। नर्मदा पर बनने वाले बाँध को लेकर हुए संघर्षों में और जन आन्दोलनों के राष्ट्रीय समन्वय के नाम से संगठित कार्यकर्त्ताओं ने इन बातों की ओर देश का ध्यान आकर्षित किया है। भूगर्भ के पानी के इस्तेमाल को लेकर वाराणसी और केरल में कोका–कोला कम्पनी के विरोध में आन्दोलन चले हैं। देश के एक बहुत बड़े इलाके में समाज के सबसे गरीब वर्गों को ज़मीन और बुनियादी अधिकारों के लिये संगठित करने वाले माओवादी संगठन से सभी परिचित हैं। बीसवीं सदी के अंतिम दशकों में कृषि उत्पादन के लिये वाजिब दाम के लिये देश भर में बहुत बड़े पैमाने पर किसानों ने आन्दोलन किये। अब स्थिति यह है कि दाम तो नही ही मिलते हैं और बाजार मूल्य की दृष्टि से देश के कुल उत्पादन में कृषि का योगदान 20 फीसदी से भी कम हो गया है। अब विशेष आर्थिक क्षेत्रों के नाम पर देश भर में किसानों की जमीन हथिया कर उसे बड़े–बड़े पूँजीपतियों को सौंपने का कार्यक्रम चल रहा है। सभी जगह किसान इसका विरोध कर रहे हैं। कई स्थानों पर बड़े–बड़े संघर्षों ने आकार लिया है। इसमें कोई दो राय नही है कि विस्थापित किसान और उनके बच्चे दर–दर भटकने वाले मज़दूर ही बनेंगे। इन किसानों की विद्या को देश के पुनर्निर्माण की शक्ति के रूप में देखने की ज़रूरत है। ऐसी नीतियाँ बनाने की ज़रूरत है जो उनके ज्ञान के उत्तरोत्तर विकास और समाजहित में उसके इस्तेमाल के रास्ते खोलती हों।

इन आन्दोलनों ने इस बात की ओर ध्यान खींचा है कि किस तरह पूँजीपरस्त और पश्चिमी ज्ञान–विज्ञान व बाजार पर आधारित विकास की नीति लोगों से उनके जीवन के संसाधन ही छीन लेती है। प्राकृतिक संसाधन जैसे जल, जंगल और जमीन

बहुसंख्यक समाज के जीवन के संसाधन हैं और इन पर अधिकार उनके लिए जीवन–मरण का प्रश्न है। प्राकृतिक संसाधनों पर जनाधिकार ज्ञान के मुक्त सदुपयोग का आधार भी तैयार करता है। इससे लोकविद्या प्रतिष्ठा के रास्ते खुलते हैं बशर्ते पूँजीवादी विकास नीतियों से छुटकारा पाकर वे फिर ज्ञान प्रबंधन के जाल में न फँस जायें। इसलिये प्राकृतिक संसाधनों पर लोगों का अधिकार वास्तविक बने इसकी कसौटी भी इसी बात में है कि वे अपने ज्ञान का इस्तेमाल करने के लिये कितने स्वतंत्र हैं।

11

बौद्धिक सत्याग्रह

ज्ञान मनुष्य का स्वाभाविक गुण है। ज्ञान से ही मानवीय गुणों की प्रतिष्ठा होती है और ज्ञान से ही समाज चलता है। लेकिन यदि ज्ञान पर निहित स्वार्थों का कब्ज़ा हो जाय और यदि ज्ञान प्रबन्धकों के हाथ की कठपुतली बन जाय तो उसके शोषण के रास्ते खुलते हैं, सामाजिक मूल्यों में गिरावट आती है, बृहत् समाज में विपन्नता आती है और समाज दो हिस्सों में बँट जाता है। एक ओर ज्ञान पर कब्ज़े की पूँजी की दुनिया होती है तो दूसरी ओर लगभग सब लोग। ज्ञान की मुक्ति ही मनुष्य की मुक्ति का रास्ता है। 21वीं सदी को यह ऐतिहासिक चुनौती उठानी है। इसकी शुरूआत बौद्धिक सत्याग्रह से की जानी चाहिये।

बौद्धिक सत्याग्रह ज्ञान के सम्बन्ध में एक व्यापक दृष्टिकोण अपनाने और उसे व्यवहार में लाने का तरीका है। नीचे दिये गये बिन्दु व्यक्तिगत स्तर पर और सामाजिक स्तर पर इसे समझने और इसे अभ्यास में लाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं।

1. ज्ञान के क्षेत्र में श्रेणीबद्धता यानि ऊँच–नीच को अस्वीकार करना।
2. ज्ञान के किसी एक प्रकार को सबसे बढ़िया न मानना।
3. ज्ञान के किसी एक स्थान को सबसे अधिक महत्व न देना।
4. ज्ञान के निर्माण के किसी एक तरीके को सबसे सही न मानना।
5. ज्ञान के निजीकरण का विरोध करना।
6. ज्ञान के संगठन के विविध तरीके अपनाना।

7. कम्प्यूटर सूचनाओं के भण्ड़ारण और प्रक्रियाओं की मशीन है इसे मनुष्य की ही एक कृति से अधिक दर्जा न देना।
8. ज्ञान के प्रबन्धन में कम्प्यूटर को एक मशीन से अधिक दर्जा न देना।
9. इंटरनेट सम्पर्क और संचार का माध्यम है कोई अलग किस्म का समाज बनाने का माध्यम नहीं। मायावी (virtual) दुनिया की सीमाओं को पहचानना और उजागर करना।
10. लोकविद्या को विद्या का सम्मान देना।
11. लोकविद्या की सामाजिक प्रतिष्ठा के लिये कार्य करना।
12. लोकविद्या–धारक समाजों के प्रति सम्मान की दृष्टि रखना।
13. शिक्षा में लोकविद्या के समावेश के तरीके विकसित करना।
14. कला को केवल मनोरंजन का साधन बनाने का विरोध करना।
15. ज्ञान के शोषण की व्यवस्थाओं को उजागर करना और इस शोषण के विरोध के संघर्षों में शामिल होना।
16. व्यापार और बाजार के मार्फत किसानों और कारीगरों की विद्या के शोषण का विरोध करना।
17. लोकविद्या–धारक समाज अपनी विद्या का इस्तेमाल बिना रोकटोक कर सके इसकी हिमायत करना।

उपरोक्त मान्यताओं के अनुरूप अपना जीवन ढालना ही आज बौद्धिक सत्याग्रह का रूप है।